जन-ज्ञान (मासिक)

ओ३म्

र्यादा
षोत्तम
ाम

संक्षिप्त रामचरित्र

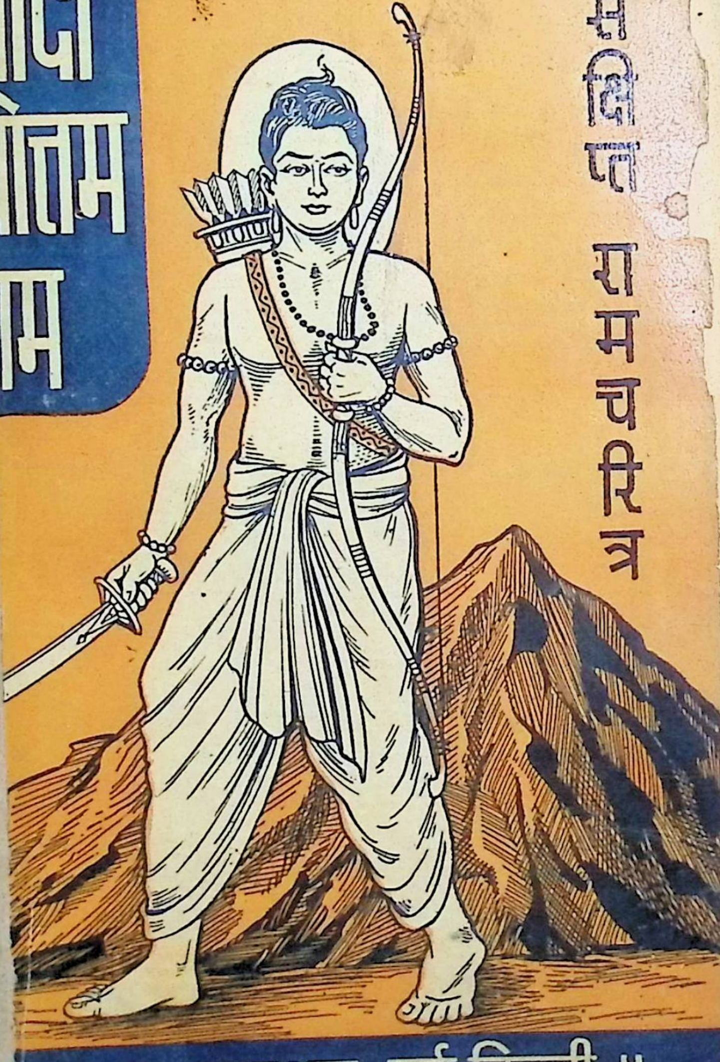

न-ज्ञान-प्रकाशन, नई दिल्ली-५

भारत सरकार के राज्य मन्त्री

माननीय प्रो० शेरसिंह जी की शुभ कामना

सत्यार्थ प्रकाश

का

अधिकाधिक

प्रचार

हो

नई दिल्ली, २५ फरवरी

"जन-ज्ञान-प्रकाशन" नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश देखने का अवसर प्राप्त हुआ। महर्षि दयानन्द के इस अमर ग्रंथ का प्रकाशन बहुत सुन्दर और आकर्षक बन पाया है। सजिल्द ग्रन्थ का प्रचारार्थ मूल्य २) इस मंहगायी के जमाने में काफ़ी कम है।

छपायी तथा गेट अप अति सुन्दर होने से विवाह आदि अवसरों पर भेंट करने के लिए यह अच्छे उपहार का काम देगा।

मेरी इच्छा है कि यह अधिकाधिक लोकप्रिय हो—

—शेरसिंह

दयानन्द संस्थान
नई दिल्ली का प्रकाशन

आर्य जनता का अपना
प्रतिनिधि

जन-ज्ञान

(मासिक)

सम्पादक—

राकेश रानी

दूरभाष : ५६६६३९

पता

१५९७ हरध्यानसिंह मार्ग
निकट ३१-नाई वाला
करौल बाग, नई दिल्ली-५

वार्षिक मूल्य १०)
विदेश में एक पौंड
आजीवन २०१)

वर्ष ४ : अंक १२

टूट न जाए तार..........

—

मन वीणा झंकृत हो प्रभु जी !
गाती तेरे गान,
सुबह शाम दिन रात तुम्हारा,
करती है गुण गान

तुम्हीं नाथ ! सब के दाता हो,
रक्षक सब के प्राण,
सब विधि सब की सुधि लेते तुम,
करते हो कल्याण,

इसीलिये मैं आज तुम्हारे,
पास बैठकर, हे भगवान्,
तुम से तुम को मांग रहा हूँ,
दो प्रभु यह वरदान !

साथ तुम्हारा कभी न छूटे,
टूट न जाय तार
तुम से लूँ मैं सदा प्रेरणा,
तुम्हीं रहो आधार ?

ओ मेरे प्रभु, मेरे मन को,
इतना दो पावन विश्वास,
तेरे बल से बली रहूं मैं,
कभी न रूठे मेरी आश !

—भारतेन्द्रनाथ

महर्षि दयानन्द के दिव्य स्वप्नों की पूर्ति के लिये

धरती पर वैदिक विचारधारा का साम्राज्य
स्थापित करने के लिये

=×=

आप प्रति वर्ष क्या दे सकते हैं ?

अधिक से अधिक देने के पवित्र संकल्प के साथ

आज ही

"दयानन्द-संस्थान" के सदस्य बनिये

१००१)	प्रति वर्ष	देकर	"संरक्षक-सदस्य"
५०१)	"	"	"पोषक-सदस्य"
२५१)	"	"	"प्रेरक-सदस्य"
१०१)	"	"	"संचालक-सदस्य"
५१)	"	"	"दाता-सदस्य"
२५)	"	"	"सहायक-सदस्य"
११)	"	"	"प्रचारक-सदस्य"

आप का सहयोग ही हमारी शक्ति है।

विनीत—
अध्यक्ष
दयानन्द संस्थान,
नई दिल्ली-५

सत्यार्थप्रकाश शताब्दी के उपलक्ष्य में

अधिक से अधिक सत्यार्थप्रकाश मंगाइये

सत्यार्थप्रकाश का नया संस्करण छप रहा है

प्रचार संस्करण—तिरंगा आर्ट पेपर का आवरण
२३×३६=१६ साइज - २००) सैकड़ा

उपहार संस्करण—कपड़े की बढ़िया जिल्द,
बढ़िया कागज, ३२५) सैकड़ा

१०, २५, ५०, १००, २५०, ५००, १००० प्रतियों के आदेश ही स्वीकार होंगे

धन आदेश के साथ ही भेजें

२० अप्रैल १९७२ के बाद इस संस्करण के आदेश स्वीकार न होंगे।

व्यवस्थापक
जन-ज्ञान प्रकाशन
१५९७, हरध्यानसिंह मार्ग, करौल बाग
नई दिल्ली-५

कड़वी-कड़वी सच्ची बातें–

अपने हाथों जला रहे हो, तुम अपनी यह नगरी,
अपने हाथों डूबा रहे हो अपनी पावन गगरी,
तोड़ रहे हो स्वयं तुम्हीं तो सारे सुन्दर सपने,
जला रहे हो घर अपना तुम, पागल होकर,
ऋषिवर का जो दिव्य स्वप्न था, उसको भूल चूके हो
वेद-ज्ञान की पावन गरिमा, तुम को याद नहीं है।
तुम्हें नहीं मालूम, कि मंजिल क्या थी,
और न यह भी याद रहा है, क्या करना था ?
तुम घातक हो दयानन्द के महा लक्ष्य के,
तुम हो जो बैठे हो पावन गद्दी पर, स्थान स्थान पर,
सोचो ! देखो, और विचारो......................
क्या करते हो काम ऋषि का........सच बोलो तुम,
लड़ना आपस में, झगड़े करना है, यही तुम्हारा धर्म बन गया,
वहक-वहक कर भीतर कुछ, वाहर कुछ यही तुम्हारा कर्म रहा,
तुम दयानन्द के शिष्य नहीं हो, तुम हो घातक..............
इतिहास तुम्हें क्षमा नहीं कर सकता, सत्य यह जान लो,
भीतर वाहर भूख लगी है पद लिप्सा की,
नेता बनकर, नारे देकर, भाषण से वहकाने की,
पाखंडों से टकराने में तुम डरते हो,
तुम में उन में भेद नहीं कुछ मैं पाता हूं।
फिर भी तुम से मैं कहता हूं, अपने जीवन का क्रम वदलो,
दयानन्द का नाम लिया है, तो उसकी कुछ तो मानो,
उस को जानो, पहचानो मेरे भाई..............................
वेद पताका बुला रही है, आगे बढ़ कर उसे उठाओ।
आगे आओ ! दयानन्द के गीत गुंजाओ।

–भारतेन्द्र

चौथे वर्ष का अन्तिम अंक

इस ग्रंक के साथ "जनज्ञान" ग्रपना चतुर्थ वर्ष समाप्त कर रहा है। ग्रौर ग्रगले ग्रंक से वह पाँचवें वर्ष में प्रविष्ट होगा। इन चार वर्षों में इस नन्हें से पौधे ने आर्य समाज की क्या सेवा की है इसका मूल्यांकन या तो हमारे पाठक कर सकते हैं या भावी इतिहास। हमारा कुछ कहना बड़ी वात होगी।

पिछले ४७ ग्रंकों की सामग्री उठा कर देख डालिये, ग्राप को स्वयं ज्ञात हो जायेगा कि कितना साहित्य और कितनी प्रेरणा 'जन-ज्ञान' दे सका है। निडर, निष्पक्ष ग्रौर पार्टी वाजी से दूर रह कर वर्तमान आर्यसमाज को ऋषि दयानन्द का आर्यसमाज वनाने के लिये इसके छोटे से स्वर ने आज देश में अपनी जो गूँज पैदा कर दी है वह आशा की शुभ किरण है।

'जन-ज्ञान' के मान्य सदस्यों के पावन सहयोग से, विना किसी पूंजी के ७८ ग्रन्थों का प्रकाशन प्रभु की अपार लीला का विश्वास कराता है। कौन मान सकता है कि विना एक पैसा भी पास हुए इतने महत्वपूर्ण ग्रन्थों का इतने ग्रल्प मूल्य में प्रकाशन हो सकता है। १—ग्रंग्रेजी सत्यार्थ-प्रकाश २—महर्षि की अंग्रेजी जीवनी। ३—हिन्दी में ऋषि जीवन के दो संस्करण। ४—हिन्दी सत्यार्थ प्रकाश अल्प मूल्य में 'जनज्ञान' के सदस्यों के सहयोग ग्रौर प्रभु के आशीर्वाद से ही तो भेंट हो सके।

आज कोई इन कार्यों को भले ही व्यर्थ का कह कर ग्रपने मन को सन्तुष्ट कर ले किन्तु कोई निष्पक्ष व्यक्ति कभी भी यह सोचने का साहस नहीं कर सकेगा कि यह कार्य और यह दिशा ठीक नहीं। और ग्रव तो यह सारा कार्य "दयानन्द संस्थान" के तत्वाववान में हो रहा है। वहुत कुछ सोचा है हमने किन्तु हमारे सोचने से नहीं, काम तो ग्रापके सोचने से चलेगा।

हमारे पास भावना है, और उसी को लेकर हम वढ़ रहे हैं। दिनरात सारी वातें भूल कर हमें स्मरण है केवल एक वात—दयानन्द की। हम धरती को ऋषि दयानन्द मय वनाना चाहते हैं।

दुर्भाग्य यह है कि ऋषि दयानन्द का लगाया पौधा आर्य समाजसंगठन ग्राज ऋषि दयानन्द को छोड़ चुका है। नेता नामधारी ग्रपनी स्वार्थ पूर्ति में लगे हैं। वे समय के प्रवाह से निराश होकर आर्य समाज की शक्ति को पथभ्रष्ट कर रहे हैं। विचारों की दौड़ में आगे निकलने का उनका उत्साह समाप्त हो गया है।

ग्रार्य समाज मन्दिरों में सत्संग ग्रौर वार्षिकोत्सव के अतिरिक्त ग्रौर कुछ नहीं होता। क्रान्ति की भावना सुप्त ही नहीं लुप्त होती जा रही है। ऐसे में

साधारण जन भटक गया है।

किन्तु निराश और हताश होने से काम नहीं चलेगा। क्रान्ति के स्वर तो गुंजाने ही हैं और उस आर्य समाज को जो ऋषि दयानन्द का मानस पुत्र है, अत्यन्त शक्ति शाली बना कर खड़ा करना ही है।

वास्तव में अब समय आ चुका है, जब सारे ऋषि के भक्त एक हो कर ऋषि के कार्यों को पूरा करने में लग जायें। आर्य समाज के मन्त्री और प्रधानों से सर्वत्र हाथ जोड़ कर कहें —बन्धुवर! यह सब साधन आर्य समाज के वेद प्रचार के लिये हैं, संग्रह या अन्य कार्यों के लिये नहीं। जहां, जो कुछ भी है वह अपने-अपने क्षेत्र के व्यक्तियों की विचार धारा बदलने में लगा दिया जाये।

हम समझें, अच्छी तरह से कि हमारा आर्य-समाज का काम केवल जन-मानस के विचारों को बदलना है। हमें लड़ना है अवैदिक विचारों से, फैलाना है वेद की विचार धारा को, इससे कम या अधिक कुछ नहीं।

हमारा विश्वास है कि यदि भारत की २ हजार जीवित समाजों के प्रधान और मन्त्री किसी तरह ऋषि दयानन्द के भक्त बन जायं तो संसार में वैदिक विचार धारा की विजय होते देर न लगेगी। "जन-ज्ञान" इस दिशा में निरन्तर यत्न करता रहेगा। वह संग्रह में नहीं वितरण में विश्वास रखता है। यदि सभी आर्य संस्थाएं संग्रह की मनोवृत्ति छोड़, संन्यासी बन प्रभु के विश्वास पर काम करने लगें तो सफलता भी मिलेगी और झगड़े भी मिटेंगे।

किन्तु हमारे पास प्रार्थना के अतिरिक्त और कोई साधन नहीं जिससे आप के मस्तिष्क बदले जा सकें। प्रभु कृपा करें, कि सभी के सोचने का ढंग बदले।

हां, हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि यदि हम सभी ने राह न बदली तो आगे आने वाली दुनिया में हमारी विचार धारा के लिये स्थान न होगा।

हम संघर्ष करते रहेंगे—

१—आर्य समाज संगठन को ऋषि दयानन्द के बताये मार्ग पर चलाने के लिये।

२—महर्षि की विचार धारा फैलाने के लिये।

३—अवैदिक विचारों की समाप्ति के लिये।

सत्य हमारा अस्त्र, ईश्वर विश्वास हमारी पूंजी और ऋषि भक्तों का आशीर्वाद हमारी प्रेरणा है। यह सब सदा मिलते रहें, हम महान संन्यासी के दिखाये मार्ग पर बढ़ते रहें, कभी झुके नहीं, रुके नहीं, यही आशीर्वाद सदा देते रहिये।

—राकेश रानी

जन-ज्ञान के सदस्यों से

यदि आप वी० पी० मंगाने की आदत
छोड़ दें तो–

वर्ष में हजारों रुपये
बच सकते हैं

आप केवल इतना कीजिए कि
शुल्क-समाप्ति का पत्र मिलते ही
१०) मनीआर्डर से भेज दें।
या
यदि किसी कारण से भी सदस्य न रहना चाहें
तो
१० पैसे खर्च कर एक कार्ड द्वारा
अपने निर्णय से सूचित कर दें

यह आपका आगे बढ़ने में भारी सहयोग होगा

क्या आप ध्यान देंगे ?

–सम्पादक

हम 1 लाख सत्यार्थप्रकाश प्रतिवर्ष प्रकाशित करना चाहते हैं।

इस का मूल्य कम रखने के लिए हमें १) प्रति आपकी सहायता चाहिए।

जो सत्यार्थप्रकाश हमने अल्प मूल्य में दिया है, उसे देखिए और उसे देख कर यदि आप को विश्वास हो, श्रद्धा हो और आप के मन में भी सत्यार्थ प्रकाश को घर-घर पहुंचाने की भावना जागे तो—

उदारता से अधिक से अधिक धन भेजिए।

आप जितने रुपए भेजेंगे
उतने ही "सत्यार्थप्रकाश" प्रकाशन का पुण्य
आप को प्राप्त होगा।

विनीत
अध्यक्ष
दयानन्द संस्थान नई-दिल्ली-५

मैं हृदय मन्दिर से लिख रहा हूं ~ भारतेन्द्र

उजाले की किरण

उजाला बाहर से नहीं भीतर से आता है आंख न हो तो सूरज की रोशनी से भी कोई लाभ नहीं। इसी तरह यदि उजाला अर्थात् आनन्द प्राप्ति का साधन 'मैं' न रहूँ तो आनन्द का सागर भी मेरे लिए किस काम का ?

हम आनन्द की खोज बाहर करते हैं पर वह भीतर है, हमारे अपने पास। किन्तु उस की अनुभूति हम कर नहीं पाते, क्योंकि हमारी ग्रहण शक्ति नष्ट हो चुकी है।

'धर्म' नाम है उस मार्ग का जो आनन्द दे सके। ऐसा आनन्द जिस की कहीं समाप्ति नहीं, न सीमा है। जो आनन्द न दे सके वह धर्म, धर्म नहीं है। सत्य, धर्म और ज्ञान का उद्देश्य है 'आनन्द'। यदि परिणाम भिन्न है तो इन तीनों में कहीं खोट है, यह भली भांति समझ लेना चाहिए।

प्यार और आनन्द एक ही अनुभूति के दो नाम हैं। मोह—और प्यार परस्पर विरोधी हैं। प्यार सत्य का और मोह अज्ञान का फल है। इसलिए आनन्द के लिए सत्य और जीवन का सत्य, सत्य का ज्ञान, होना आवश्यक है।

धर्म नाम है उस मार्ग का जिस पर व्यक्ति सत्य और ज्ञान की प्राप्ति के बाद चलता है। प्यार की लोरियां और आनन्द का संगीत धर्म की राह पर गूंजता है। मनुष्य अपने को जान कर उस सत्य को पा लेता है जिसे परमात्मा कहते हैं। प्रभु के प्रति उमड़ता प्यार मोह नहीं सत्य का स्वरूप दर्शन है। उस प्यार में जीवन-आलोक—गति और प्राण की झंकृतियां नृत्य करती हैं।

जीवन आप का अन्धकार में बीत रहा है, हम आप को प्रकाश में स्नान का निमंत्रण देते हैं। प्रकाश अर्थात् आनन्द, आनन्द अर्थात् प्यार, प्यार अर्थात् मिलन प्रियतम से, जिस से मिलना ही मनुष्य का, मनुष्य जीवन के सत्य का परम लक्ष्य है : अंतिम मंजिल है।

इस मंजिल की ओर चले बिना उजाला कभी पास नहीं आ सकता, यह बात जो जब भी समझ ले, उतना ही कल्याण है।

अपनी असफलता

अपनी असफलता का दोष आप पर थोपना हम उचित नहीं समझते। वस्तुतः हमारी साधना में अभी इतनी शक्ति नहीं आयी कि हम आप को साहित्य-प्रचार की उपयोगिता समझा सकें।

यह सच है कि आप सत्यार्थ प्रकाश और ऋषि सिद्धान्तों का प्रचार व्यर्थ का काम समझते हैं, किन्तु इस में भी अपराध हमारा है आपका नहीं। आपने आज तक ईंट और पत्थरों के भवन खड़े करना ही आर्यसमाज का काम समझा है और हम इसे साध्य नहीं साधन मात्र समझते हैं।

हम आप के काम करने के ढंग को आर्यसमाज के हित में नहीं समझते और आप हमारे प्रचार कार्य का महत्व नहीं आंक पाते। इस दूरी को हम नहीं मिटा सके, यह अपराध हमारा है।

बड़े साहस से हमने ऋषि के अनुयायियों को सत्यार्थ प्रकाश का प्रकाश और ऋषि जीवन का आलोक फैलाने के लिए पुकारा था किन्तु हमारी पुकार उन कानों ने नहीं सुनी जिन के हाथ में आर्य समाज संगठन की शक्ति है।

हम जानते हैं कि अभी वे नहीं सुनेंगे, क्योंकि हमारी सुनाने की सामर्थ्य में कमी है। अन्यथा क्या दिल्ली के १५० आर्य समाजों में एक भी आर्यसमाज सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार में न लगता। हम दिल्ली के आर्य समाजों के प्रधान और मंत्रियों को बधायी (?) देना चाहते हैं कि उन की रुचि सत्यार्थ प्रकाश और ऋषि जीवन के प्रचार से हटकर पार्टी बाजी और राजनीति में इस तरह उलझी है कि और सब भूल गया है।

पर याद रहे आग कभी बुझती नहीं और सत्य कभी रुकता नहीं। जो ज्योति ऋषि दयानन्द ने दिखायी थी वह आप भुला दें, पर दयानन्द के सच्चे अनुयायी उसे मिटने न देंगे और समय आएगा जब आप अपनी कार्य पद्धति को बदलने के लिए स्वयं तयार होंगे।

धर्म, सत्य और ज्ञान की किरणों में जो शक्ति है उसे कोई मिटा नहीं सकता। हमारा यह निश्चित विश्वास है कि ऋषि का जीवन और सत्यार्थ-प्रकाश जहां भी पहुँचेगा वहां अधर्म, अज्ञान और असत्य ठहर नहीं सकता।

हम जलाना चाहते हैं उन सब विचारों को जिन्होंने पाप फैलाया है, और चाहते हैं फैलाना वह ज्ञान जो मनुष्य को मनुष्य बना सके।

धर्म की ध्वजा को गिरते हुए जो देखना चाहें देखें, पर जिन्हें प्यार होगा धर्म, सत्य और ज्ञान से, वे प्राण देकर भी इस अमर ध्वजा को फहराने में लगे रहेंगे।

हम पुकारते रहेंगे तब तक जब तक कि सारी धरती दयानन्द के गीत

गाती वेद-ज्ञान मार्ग पर नहीं चल पड़ती ।

पुराण, कुरान, बाइबिल आदि के विषाक्त मजहबी प्रवाहों से टकराने में जो डरते हैं वे डरें, पर दयानन्द के सच्चे सैनिक तो प्राण देकर भी सत्य कहेंगे, प्रचारेंगे और सत्य की मशाल थाम आगे और आगे बढ़ेंगे ।

और हम भी निराश होने वाले नहीं हैं, हम दयानन्द के अनुयायी और प्रभु मार्ग के प्रसारक हैं ।

बाधाएं आएं, आने दो, दानवीय होने दो वार ।
छाती खोल बढ़ेंगे आगे, सहते हुए सभी प्रहार ।

हम जीतेंगे, और दयानन्द के विचारों की विजय पताका भूमंडल पर फहराएंगे, कोई साथ दे या न दे, जब तक प्रभु का वरद हस्त हमारे ऊपर है तब तक हम बढ़ते जाएंगे ।

धन्यवाद उन का, जो साथ दे रहे हैं, धन्यवाद उन का जो इसे व्यर्थ का कहकर उपहास उड़ा रहे हैं । हम सभी के प्रति आभारी हैं, किन्तु सब इतना समझ लें कि आर्य समाज की विचारधारा की विजय यदि इष्ट है तो रास्ता बदलना होगा और विश्व विजय के लिए "साहित्य-अस्त्र" निर्माण में अपनी शक्ति लगानी होगी ।

हमें अपनी नीति-रीति और कार्य शक्ति पर विश्वास है और भरोसा है प्रभु के आशीर्वाद का, हम बढ़ते जाएंगे प्रकाश फैलाते जाएंगे—हमारा कार्य रुक नहीं सकता—

आप को श्रद्धा हो, विश्वास हो और भावना हो ऋषि के प्रति तो साथ दीजिए, अन्यथा जैसी आप की इच्छा—

समय के प्रवाह में हम तेजी से बह रहे हैं । नाम के सिवाय और हमारे पास अपना और क्या रह गया है, यह भगवान ही जानता है ।

कभी-कभी तो मन बड़ी तेजी से विद्रोह करता है पर अपनी दुर्बलता से मसोस कर रह जाना पड़ता है । अन्यथा सत्य का सूरज इस तरह अंधेरे में न सिसकता ।

आखें अब भी खुलेंगी या नहीं !

कुछ लोगों ने अपने लम्बे-चौड़े भाषणा में घोषणाएं की थीं १९७५ में एक प्रान्त में आर्य राज्य स्थापित कर आर्य जनता को भेंट करने की ।

और १९७२ के चुनावों ने बता दिया कि वे घोषणाएं कितनी खोखली थीं । हम इस विषय में कुछ कहना नहीं चाहते थे पर अब से दो वर्ष पूर्व जब हमने कुछ लिखा तो कुछ उत्साही आर्यों ने उत्साह में हमें भ्रान्त और उन्हें ठीक बताया था ।

पर अब सब कुछ सामने है। सुबह का भूला यदि शाम को घर लौट आए तो भूला नहीं कहलाता। नारों की राजनीति के विशेषज्ञ यदि अब भी राह पर आ जाएं और ऋषि दयानन्द के दिखाए मार्ग पर चल दूसरों को चलाने का व्रत लें तो हम समझेंगे, कुछ खोया नहीं। हम जो कहें वह कर के दिखाएं तभी हम सफल हैं, प्रभु पुत्र हैं, आर्य हैं। हमें युद्ध करना चाहिए अनार्यों से, और सब आर्य एक साथ मिल चलें ऋषि की राह पर। यही समय की मांग है। पर कौन सुनेगा! **काश कि हम समझ सकते कि आर्य राज्य चुनाव लड़ने से नहीं जनता को आर्य बनाने पर स्थापित होगा।**

उस-सा और कोई नहीं

उस की माया किसने जानी, फिर भी वह इतनी प्रगट है कि नयन हीन ही उसे अनदेखा कर सकते हैं। अभी कल शाम की बात है कि हम एक नन्हें शिशु की अठखेलियां देख रहे थे। देखते-देखते एक दम उस नन्हें बालक की भाव भंगिमा को देख मन प्रश्न कर उठा, कौन-सी है वह शक्ति जो इस छोटे से प्राणी में बुद्धि, प्रेरणा, गति, भाव, चिन्तन दे रही है?

क्या मनुष्य या विज्ञान ऐसी किसी स्वतः प्रेरणा को जन्म दे सका है? बालक हो या प्रकृति, सरिता हो या हिमगिरि, साँझ हो या सवेरा जहां देखो किसी निर्माता की अद्भुत रचना स्पष्ट दीख पड़ती है।

पत्ते-पत्ते की कतरन न्यारी, पर हाथ कतरनी कहीं नहीं। सचमुच प्रभु की लीला पर मुग्ध हो मन अनायास से कह बैठता है, वह सचमुच महान है। वही है, वह ही है, उस-सा और कोई नहीं, उसे भूल कर हम और क्या पा सकेंगे? पाकर करेंगे भी क्या?......................'

त्रिवेणी स्नान का पुण्य लाभ

असफलता कोई नहीं चाहता फिर भी सफलता मिलती नहीं। कारण की खोज में भी भटकन के सिवाय और किसी को क्या मिल सका है?

आप ने कभी सोचा भी है कि आखिर क्यों नहीं मिलता हमें वरदान...... सोच कर भी यदि उत्तर न मिल सका हो तो आइए हम बताते हैं आप को

—सफलता प्राप्ति का एक मात्र मार्ग है 'सत्य', जी हां सत्य। जहाँ "सत्य", वहाँ सफलता, जहां सफलता वहां "सत्य"। और सफलता की कसौटी है आनन्द।

—आप सोच सकते हैं कि आज कल तो सफलता सच से नहीं झूठ से मिलती है। पर झूठ की सफलता में चिन्ता निराशा और दुःख की छाया का मिश्रण रहता है। सत्य द्वारा प्राप्त सफलता में आनन्द, उमंग, उत्साह और आशा का संगीत मन-मन्दिर में गूंजता है।

'सत्य' को छोड़ कर जीना वैसा ही है जैसे भोजन को त्याग कर पेट भरना। जीते तो पशु भी हैं पर उस जीवन का क्या लाभ-जहाँ सुख-शांति और आनन्द का संगम न हो?

त्रिवेणी स्नान का पुण्य लाभ तभी प्राप्त हो सकेगा जब सत्य के मार्ग पर चल हम धर्म गंगा तक पहुंच जीवन सफल कर सकें।

दीवारें गिरा दो!

मनुष्य को मनुष्य बन कर यदि धरती पर रहना है तो अपने बीच में खड़ी सारी भेद की दीवारें गिरानी पड़ेंगी। जाति, मत, मज़हब, वाद और राष्ट्र, रंग भेद के नाम पर जो दीवारें खड़ी की गयी हैं उन को जड़ से उखाड़ समुद्र की गहराइयों में डुबा देना पड़ेगा।

यह काम कौन करेगा?

हमारा उत्तर है आर्यसमाज! संसार में केवल आर्यसमाज ही ऐसा संगठन है जो मनुष्य को मनुष्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं मानता। मनुष्य केवल मनुष्य है। बस मनुष्य रूप में ही वह धरती स्वर्ग बना सकेगा।

मनुष्य हिन्दू है न मुसलमान, न सिक्ख, न ईसाई, न यहूदी न कम्यूनिस्ट। यह स्वार्थ के भेद जला धरती को एक बना साकार स्वर्ग साकार लाने के लिए हमें दीवारों को गिराना है।

मनुष्य की एकता, भावना प्रेम में निहित है। स्वार्थ-भेद के ज़हर को समाप्त कर हम ऐसी दुनियाँ बनाने में लगें **"यत्र विश्वं भवत्येक नीडं"** कि सब एक हो जाएं और यह विशाल विश्व एक घोंसला लगने लगे।

दीवारें गिरा कर मनुष्य मात्र को धर्म मार्ग पर चलाना आर्यसमाज का लक्ष्य और कार्यक्रम है।

भंगड़ा जिन्दाबाद!

आर्यसमाज के सदस्यों नेताओं व सर्व साधारण के सामाजिक कार्यक्रमों में कोई अन्तर प्रायः नहीं दीख पड़ता। जिन बुराइयों की हम प्राय: आलोचना करते हैं वही बुराइयाँ नग्न रूप में इन तथाकथित आर्यों के विवाहादि अवसरों पर भी दीखती हैं। जिन्हें देख हमारा सिर लज्जा से झुक जाता है। शायद ही कोई ऐसा विवाह हो जहां भंगड़ा, दहेज आदि न हो।

क्या कहें, किसे कहें कुछ समझ नहीं आता। हमारी कथनी और करनी में इतना अधिक अन्तर आ चुका है कि कथनी का प्रभाव कहीं भी नहीं पड़ पाता।

—भारतेन्द्रनाथ

प्रचार के लिये नये प्रकाशन

१. **सत्यार्थप्रकाश (उपहार संस्करण)**

मूल्य ४) = ३२५) सैकड़ा

कपड़े की जिल्द : दुरंगो स्क्रीन प्रिंटिंग

२. **निमन्त्रण : आर्यसमाज का**

स्व. पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय लिखित

मूल्य १५ पैसे । १०) सैकड़ा

३. **सत्संग-महिमा**

मूल्य २० पैसे । १५) सैकड़ा

४. **ईश्वर-महिमा**

स्व. स्वामी सर्वदानन्द जी का अध्यात्म संबंधी अनुपम ग्रंथ

मूल्य ६० पैसे । ४०) सैकड़ा

५. **वैदिक समाजवाद**

पं. वीर सेन जी लिखित—

मूल्य ८० पैसे । ६०) सैकड़ा

६. **वैदिक अध्यात्म**

मूल्य ६० पैसे । ४०) सैकड़ा

७. **मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम**

अनुपम—प्रेरक—जीवन गाथा

पं० दीनानाथ सिद्धांतालंकार लिखित—

मूल्य ८० पैसे । ५०) सैकड़ा

प्रचार के लिये अधिक से अधिक मंगाएं

जन-ज्ञान-प्रकाशन

१५९७, हरध्यानसिंह रोड

नई दिल्ली-५

वेदामृत के सम्बंध में

वेदों के चुने हुए अनमोल मन्त्रों का संग्रह वेदामृत में आर्य जगत् के दो महान् विद्वानों द्वारा किया गया है। स्व० श्री पाद पं० दामोदर जी सातवलेकर व स्व० स्वामी वेदानन्द जी 'तीर्थ' की विद्वत्तापूर्ण व्याख्या से युक्त यह ग्रन्थ ४५० पृष्ठ के लगभग **बड़े साइज़** और **मोटे टाइप** में होगा।

हमने इसका मूल्य ३००) सैकड़ा, १५५) की ५०, ८०) की २५ और ४०) की १० प्रतियां घोषित किया है। पाठकों की मांग पर धन भेजने की तिथि २० अप्रैल १९७२ कर दी गई है।

दस प्रतियों से कम मंगाने पर भी ४) प्रति ही धन लिया जायेगा।

सभी प्रतियों के भेजने का व्यय भी मंगाने वालों से ही लिया जायेगा। सभी यह अंकित कर लें कि इस ग्रन्थ की लागत ५) से अधिक है। और आप ही के दान से हम इसे कम मूल्य पर देने में सफल होंगे। कृपया शीघ्रता करें और यदि 'वेद' पर श्रद्धा हो तो अधिक से अधिक प्रतियां मंगाएं। निश्चित तिथि के बाद ५) प्रति ही दी जाएंगी।

सत्यार्थ प्रकाश प्रेस में

सत्यार्थप्रकाश प्रेस में दिया जा चुका है। पर कागज के लिए धन का प्रबन्ध नहीं हो सका है। क्या धन के अभाव में आप काम रुकने देंगे? स्वयं कर्तव्य का निर्णय कीजिये।

हमारे सम्पूर्ण कार्य आपके सहयोग पर ही निर्भर हैं। आप यदि नहीं चाहेंगे तो कार्य कैसे बढ़ेगा?

—भारतेन्द्रनाथ

अपनी गौरवपूर्ण भेंट परम्पराओं के साथ

दयानन्द संस्थान की अपूर्व भेंट

लागत से भी कम मूल्य पर

१९७३ के लिए

वैदिक-डायरी

इतनी – सुन्दर – आकर्षक और उपयोगी कि

आप आश्चर्य करेंगे

आदेश क्रमशः भेजे जायेंगे।

अपनी प्रतियां सुरक्षित कराएं

टेबल डायरी १००) सैकड़ा पाकेट डायरी ७५) सैकड़ा

जन-ज्ञान (मासिक) का नमूना बिना मूल्य मंगाएं

जन - ज्ञान - प्रकाशन

१५९७ हरध्यानसिंह मार्ग नई दिल्ली

आज ही मंगाइये

आर्यसमाज का गौरव : साहित्य में प्रथम

इतना सुन्दर और

आकर्षक कलैण्डर

दयानन्द संस्थान भैंट करता है

७ रंगों में : २२×३२ इञ्च
संगठन सूक्त : आर्यसमाज के नियम सहित
अप्रैल १९७२ से मार्च १९७३ तक तिथियाँ

आर्य समाज के प्रकाश स्तंभ कलैंडर का मूल्य

६ प्रति का मूल्य ४.२०	डाक पैकिंग व्यय	२.५०
१३ प्रति का मूल्य ८.१५	डाक व्यय	३.५०
२५ प्रति का मूल्य १६.००	,, ,,	५.५०
५० प्रति का मूल्य ३०.००	,, ,,	६.००
१०० प्रति का मूल्य ५०.००	,, ,,	६.००

—धन अगाऊ भेजें। v.p. नहीं भेजी जायेगी I

शक विक्रमी संवत् सहित । रंगीन पट्टी

कृपया पूरे धन के साथ अपना आदेश तुरन्त भेज दें। ऐसा न हो कि स्टाक समाप्त होने पर नए प्रकाशन की बाट देखनी पड़े।

प्रबंधक-दयानन्द संस्थान नई दिल्ली ५

वैदिक विचारधारा भूमंडल पर फैलानी जिन्हें इष्ट हो—
जो ऋषि दयानन्द के दिव्य स्वप्नों को
मूर्त्त रूप देना चाहें—वे

"दयानन्द–संस्थान" को शक्तिशाली बनाएं

"दयानन्द संस्थान" प्रत्येक संभव उपाय से धरती के प्रत्येक मन मन्दिर पर वेद ज्ञान की पताका लहराने हेतु कृत संकल्प है।

संस्थान ने प्रथमबार सस्ता-सुन्दर आकर्षक सत्यार्थप्रकाश भेंट किया

और

अब भेंट कर रहा है "वेदामृत"

लक्ष्य पूर्ति के लिए आज ही 'दयानन्द-संस्थान' के सदस्य बनिए

१००१)	प्रति वर्ष	देकर	"संरक्षक-सदस्य"
५०१)	"	"	"पोषक-सदस्य"
२५१)	"	"	"प्रेरक-सदस्य"
१०१)	"	"	"संचालक-सदस्य"
५१)	"	"	"दाता-सदस्य"
२५)	"	"	"सहायक-सदस्य"
११)	"	"	"प्रचारक-सदस्य"

आप का सहयोग ही हमारी शक्ति है।

विनीत

अध्यक्ष
दयानन्द संस्थान,
नई दिल्ली-५

इतिहास :

—ग्रवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार

हम विश्व विजय करते रहे हैं......

देश में यह भावना प्रसारित की जा रही है कि इस देश की विजयी वीर वाहनियां कभी देश से वाहर नहीं गयीं। आश्चर्य तो यह है कि इस पर गर्व भी किया जाता है, जब कि यह हमारे शौर्य और पराक्रम के अभाव का द्योतक है। परन्तु सत्य इसके विपरीत है। नील नदी की घाटियों में कभी हमारे पैर संचरण करते थे, अन्यथा पुराणों में इस नदी के उद्गम-स्थल जाने के मार्ग का यथातथ्य वर्णन कैसे आता ? जर्मन अन्वेषकों ने स्वीकार किया है कि उन्होंने पुराणों में निर्दिष्ट मार्ग का ही अनुसरण कर नील नदी के उद्गम स्थान को खोजा।

मिस्र के पिरामिड में लकड़ी की एक मूर्ति मिली है, जिस पर गीता के '**जीवभूतः सनातनः शरीरमवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामति**' श्लोक का अक्षरशः अनुवाद दिया गया है। इस मूर्ति के साथ कब्र में जो वस्तुएं मिली हैं वे सब भारतीय हैं। पुनर्जन्मवाद मिस्रियों के तत्त्वज्ञान में नहीं था। अतः वे मुर्दे को सुखा कर रख देते थे। ऐसे देश की कब्र में भारतीय विचार का मिलना एक आश्चर्यजनक बात है। यह कब्र विक्रम पूर्व तीन सहस्र वर्ष की है उत्तर तथा पूर्वी अफ्रीका में कभी भारतीय वसते थे, यह इस बात से स्पष्ट है। बस्तियां विजय के विना नहीं बसतीं।

भारतीय इतिहास में चोल सम्राटों का शासन पंचायती व्यवस्था के लिए प्रसिद्ध है। इन सम्राटों ने दिग्विजय भी की थी। चोल सम्राटों ने ८५० ई० से १२५० ई० तक राज्य किया। इस काल में उन्होंने हिन्द महासागर को चीनियों और अरबों के उत्पातों से मुक्त रखा। चोलों के शासन के बाद ही चीनी सम्राटों ने हिन्द महासागर को चीनी झील बनाने की कुचेष्टा की और एक नहीं सत्रह अभियान किये। इस दृष्टि से चोलों की दिग्विजय का बहुत महत्व है। इस से यह भी प्रकट होता है कि भारतीत नौशक्ति प्रबल थी और उस की दक्षिण-पूर्व एशिया में सर्वत्र धाक थी।

कल्याणपुरम में प्रवेश के बाद चोल सम्राट राजाधिराज ने विजयराजेन्द्र

की उपाधि ग्रहण की। राजाधिराज ने लंका पर आक्रमण कर उसे जीता। उस के भय से लंका-नरेश विक्रम बाहू ने दक्षिणी तमिल देश छोड़ दिया और सात सागरों से परिवेष्टित 'इलम द्वीप' में शरण ली। यहां उसने अपना अभिषेक कराया। परन्तु रण-क्षेत्र में मुकुट ही नहीं, अपितु अपना हाथी भी खो बैठा। बाद में पत्नी और बहिन भी पकड़ी गयीं। बड़े मोतियों वाला राजमुकुट छिन गया, जो श्री वल्लभ-मदनराजन का था और कृष्ण के परिवार से आया था। महावंश से इस बात की पुष्टि होती है कि १०१७ ई० में सम्पूर्ण इलम-मण्डल चोल राज्य का एक भाग था। महावंश यह भी बताता है कि इस के बारह साल बाद लंका के लोगों ने विद्रोह किया और 'कसूच' के चारों ओर छः मास तक युद्ध हुआ। इस में चोल साम्राज्य की ९५,००० सेना ने भाग लिया। एक चोल-अभिलेख के अनुसार चोल-युद्ध में विक्रम बाहू रणक्षेत्र में मारा गया और उसका राज्य राजाधिराज के हाथ में आ गया। परन्तु महावंश विक्रम बाहू की मृत्यु बीमारी से बताता है और कहता है कि जब वह लड़ाई की विशाल तैयारी कर रहा था तब मर गया।

रोहना (लंका का दक्षिणी भाग) ने एक दशक के बाद फिर विद्रोह किया। रोहना के प्रत्येक राजा ने अपने जीवन का यही ध्येय बनाया था कि लंका से डामिलों (तमिलों) को निकाल दिया जाये। महालन कित्ती और उस का पुत्र जगतीपाल भी चोलों से लड़ते हुये मारे गये। चोलों को एक-साथ पांडवों, सिंहलों और केरल का मुकाबला करना पड़ रहा था और ये तीनों विवाह-सूत्र से परस्पर सम्बद्ध थे। राजाधिराज के उत्तराधिकारी राजेन्द्र द्वितीय को भी लंका में लड़ना पड़ा और वहां विद्रोह को उस ने अनेक बार दबाया। लंका में प्राप्त भारतीय मुद्राओं में राजाधिराज और राजेन्द्र की मुद्राएं भी प्राप्त हुई हैं। चोलों के अनेक अभिलेख भी मिले हैं। इनसे इतना ज्ञात होता है कि रोहना को छोड़कर शेष लंका अनेक वर्षों तक चोल साम्राज्य का भाग रहा। रोहना के राजकुमार वित्ती ने विजय बाहू नाम धारण करके स्वाधीनता-संग्राम को जारी रखा। उस के वंशजों ने भी इस परम्परा को निवाहा। चोलों ने विद्रोहों को निर्ममता से कुचला। अनेक को देश-निर्वासित किया, अनेक के अंग काट दिये, राजवंश की स्त्रियां भी अपमानित होने से नहीं बचीं।

चोल सम्राट राजेन्द्र ने काडाराम को विजय किया। काडाराम की श्रीविजय है। तिरुवलांडाड-प्रशस्ति में लिखा है कि राजेन्द्र ने कटाह जीता। परन्तु इसका विस्तृत वर्णन तमिल-प्रशस्ति में दिया गया है —

उत्तुंग लहरों वाले समुद्र के मध्य राजा ने अनेक जहाज भेजे। काडाराम के राजा संग्राम विजयोत्तुंग वर्मा को वन्दी बनाया और उस की सेना के हाथी छीन लिये। उस का विशाल कोष भी पाया और उस के विशाल नगर श्री-

विजय के महाद्वार विद्याधरतोरण भी प्राप्त किये। उसके कपाट मणिमाणिक्य से चमक रहे थे।

कटाह कहां है, इस का पता १८९१ ई० से लगाया जा रहा है, परन्तु ऐतिहासिकों की दृष्टि मद्रास से बाहर नहीं गई। राजेन्द्र का यह विजय-अभियान समुद्र पार कर हुआ था, यह अन्वेषकों ने ध्यान में नहीं रखा। जिन्होंने खयाल भी किया वे बर्मा से आगे नहीं बढ़े। कुछ ने निकोबार को ही कटाह बताया। पेगू (बर्मा) के पास दो स्तम्भ मिले और इन को चोलों का बताया गया। परन्तु १९१२ ई० में कापडेज ने 'ले रोयायूमे डी 'श्रीविजय' नामक निबन्ध में सिद्ध किया कि काडाराम ही श्रीविजय है। राजेन्द्र ने श्रीविजय के राजा और उस के माण्डलिक राजाओं को भी पराजित किया।

चीनी राजवंश सांग की कथा में यह वर्णित है कि १००३ ई० और १००८ ई० में सानफोत्सी से दो राजदूत चीन गये। चीनी इतिहास में वर्णित सानफोत्सी के शासक वस्तुतः काडाराम या श्रीविजय के शासक थे। सानफोत्सी को पहले के चीनी चे ली-फो चे या फो चे नाम से जानते थे। चीनी लेखकों ने इस को सुमात्रा के पूर्वी तट पर स्थित पालेम्बांग से पहचाना है। अतः सानफोत्सी, चे ली-फो चे और श्रीविजय एक ही हैं। राजेन्द्र ने सर्वप्रथम सुमात्रा में पालेम्बांग को विजय किया। उन्होंने मलाया प्रायद्वीप और द्वीपसमूह (हिन्देशिया) के इतिहास में ८वीं से १३वीं शती तक जो भाग लिया, वह अभी तक प्रकाश में नहीं आया है, परन्तु राजेन्द्र की विजय के कारण मलाया प्रायद्वीप और हिन्देशिया दक्षिण भारत के निकट आये।

हुल्टजशह का यह कथन ध्यान देने योग्य है कि अभिलेख में वर्णित सब स्थान युद्ध में काडाराम के राज्य से लिये गये। राजेन्द्र चोल प्रथम ने पहले काडाराम के राजा को पराजित किया, उस का कोष छीना, फिर कुछ देश जीते और अन्त में काडाराम को विजय किया। यह प्रसिद्ध है कि काडाराम और श्रीविजय का अधीश्वर एक ही व्यक्ति था—संग्राम विजयोतुङ्ग वर्मा। राजेन्द्र ने काडाराम-नरेश से पालेम्बांग (सुमात्रा) का राज्य जीता। राजेन्द्र-प्रशस्ति में अगला नाम है पानी या पनेई। यह प्राचीन मलैयूर के पूर्वी तट पर था—मलाया प्रायद्वीप के दक्षिणी छोर पर या पुराने सिंगापुर जलडमरूमध्य के उत्तरी तट पर। राजेन्द्र का विजय-अभियान सुमात्रा के श्रीविजय साम्राज्य और उस के मलाया प्रायद्वीप एवं द्वीपसमूह (हिन्देशिया) के अधीनस्थ राज्यों के विरुद्ध था।

काडाराम को संस्कृत साहित्य में कटाह के नाम से लिखा गया है। काडाराम को समुद्र की लहरें प्रक्षालित करती हैं। इस वर्णन से कालागम और काडाराम एक होने चाहियें। श्री नीलकंठ शास्त्री का कहना है कि विश्रुत पतिनप्पलाई ही काडाराम है। यह भारत और पूर्वी देशों के बीच व्यापार-

मार्ग में एक महत्वपूर्ण बन्दरगाह था। संस्कृत का जो कटाह है, वह चीनियों का कीए-चा है। बाद के चीनी लेखकों ने इसी को की-तो लिखा है। यह मलाया प्रायद्वीप के पश्चिमी तट का केडाह है। प्राचीन केडाह वर्तमान केडाह से और अधिक दक्षिण में रहा होगा, क्योंकि इत्सिंग ने लिखा है कि कीए-चा मलाया में ठहरने का आखिरी पड़ाव था। इस के बाद बंगाल की खाड़ी को पार करना पड़ता था। बंगाल की खाड़ी को पार कर यात्री सब से पहले यहीं आता था। इसी कारण श्रीविजय के नरेश को राजेन्द्र-प्रशस्ति में काडाराम का नरेश कहा गया है। काडाराम उस समय श्रीविजय के अधीन एक राज्य था। चोल सम्राटों का जहाज सर्वप्रथम यहां आया। इस बन्दरगाह का उस समय वही महत्व था, जो आज पेनांग का है।

चोल नरेशों का हिन्देशिया और चीन से बराबर सम्पर्क रहता था। श्रीविजय के शैलेन्द्र राजवंशी विजयोतुङ्ग वर्मा का चूनेगा पतनम् में डामरिण विहार बनवाना एकांकी घटना नहीं मानी जा सकती। यह पूर्वी देशों और भारत के मध्य बढ़ते सम्पर्क का एक परिणाम था। प्राचीन काल में भी इस प्रदेश का व्यापार पश्चिमी संसार और चीन को आकृष्ट करता था। अरब, भारतीय और मलाया प्रायद्वीप के लोग इस व्यापार में बिचवैया का काम करते थे। दसवीं शती के अन्त में चीनी सरकार के ध्यान में इस प्रदेश के व्यापार का मूल्य आया। नवीं शती में वहां युद्ध छिड़ जाने से चीनियों का व्यापार इस प्रदेश से टूट गया था। इस व्यापार को पुनः हस्तगत करने के लिए चीनी सम्राट ने अपने राजदूत सोना आदि के साथ भेजे थे, जिस से दक्षिण समुद्र के लोग चीन के साथ व्यापार करने को प्रवृत्त हों। इसी निमंत्रण पर श्रीविजय के नरेश ने १००३ ई० और १००८ ई० में अपने राजदूत चीन भेजे थे। चू लिन (चोल) सम्राटों का पहला राजदूत १०१५ ई० में चीन गया था। दूसरा चोल राजदूत १०३२ ई० और तीसरा १०४० ई० में चीन पहुंचा। दक्षिणी भारत और चीन के मध्य व्यापार सतत बढ़ता रहा। चू-कू-फेई ने लिखा है कि १२वीं शती के उत्तरार्द्ध में सानफोत्सी (श्रीविजय) विदेशियों के लिए समुद्र-मार्ग में अत्यधिक महत्वपूर्ण बन्दरगाह था।

राजेन्द्र के समुद्री विजय-अभियान की तिथि १०२४ ई० है। यह आक्रमण समुद्री व्यापार-मार्गों को अपने नियंत्रण में रखने और चीनी नियंत्रण में न जाने देने के उद्देश्य से किया गया था। इस के कारण भारत-चीन व्यापार बढ़ा और चोल साम्राज्य की शक्ति बढ़ी। मलाया और हिन्देशिया चोलों के लिए अपने देश के ही भाग थे। राजेन्द्र जब सिंहासन पर बैठा तब काडाराम श्रीविजय के साथ उस के मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे। बाद में दोनों के बीच विग्रह हो गया। सम्भव है श्रीविजय ने पूर्व (चीन) से व्यापार करने में बाधा दी हो या परिचित देशों की दिग्विजय करने की इच्छा से ही राजेन्द्र ने यह

अभियान किया हो। श्री विजय ने राजेन्द्र की अधीनता स्वीकार कर ली। यह चोल साम्राज्य का एक शासित प्रान्त या मण्डल नहीं बनाया गया। श्री-विजय केवल चोल सम्राटों को वार्षिक भेंट देता था, अन्यथा राजेन्द्र काडाराम को विजय कर पुराने राजवंश के किसी व्यक्ति को गद्दी पर न विठाता। सुमात्रा में १०८८ ई० का प्राप्त अभिलेख यह सिद्ध करता है कि सुमात्रा में तमिल व्यापारी बसे हुए थे।

कांरंडाई (तंजौर) प्लेट में स्पष्ट लिखा है कि कामभोज (हिन्दचीन) के नरेश ने संरक्षण मांगा और अपना राजचिह्न (आत्मलक्ष्मी) और विजयरथ भेजा। यह इस बात का प्रमाण है कि चोल साम्राज्य की छत्रछाया कामभोज (हिन्दचीन) नरेश भी चाहता था। हिन्दचीन पर कभी सूर्य वर्मन (१००२-५० ई०) का राज्य था। इस के अर्थ है कि चोल सम्राट हिन्दचीन के मित्र थे। सम्भव है हिन्दचीन के प्रति अपनी मैत्री को पूरा करने के लिए राजेन्द्र ने श्रीविजय पर आक्रमण किया हो।

राजेन्द्र ने इस दिग्विजय के बाद फिर किसी युद्ध में भाग नहीं लिया। उस के राज्यकाल में हुए अन्य युद्धों में उस के पुत्रों ने गौरव प्राप्त किया। चोलों को अपनी नौशक्ति का बड़ा अभिमान था। कहा गया है कि श्रीराम ने जिस को पुल बांध कर पार किया, उस को राजेन्द्र ने अपनी नौ-शक्ति से पार किया। इस नौ-शक्ति के बल पर ही उस ने चीन भारत के व्यापार को हस्तगत किया और हिन्दचीन को अपने संरक्षण में लिया। चोल सम्राटों की सम्पूर्ण नौ-शक्ति उस की पीठ पर थी और इसी कारण हिन्दचीन श्रीविजय का अधनीस्थ राज्य न बना और न उस समय चीनी सम्राटों के अधीन हुआ। दक्षिणी चीनी समुद्र वस्तुतः भारतीय समुद्र था और चीनी उस समय इस में प्रवेश करने का साहस न करते थे।

हम बाहर नहीं गये और हम ने दिग्विजय नहीं की, यह मिथ्या भ्रम दूर कर देना चाहिये। इस मिथ्या धारणा पर अधिष्ठित परराष्ट्र नीति भारत की रक्षा और गौरव नहीं बढ़ा सकती।

....

कृपया शुल्क-समाप्ति का पत्र मिलते ही अपना शुल्क भेज दें। वी० पी० की आदत से बचें। यह आपका भारी सहयोग होगा। —सम्पादक

नारी जगत् : —प्रकाशवती शास्त्री एम०ए०

जाग, भारतीय मां, जाग !

प्रभा रसोईघर में बैठी द्रुतगति से दाल बीन रही थी। पानी अङ्गीठी पर रखा उवल रहा था। वह शीघ्रातिशीघ्र भोजन तैयार कर लेना चाहती थी क्योंकि उसका वेटा कमल अभी अभी खेलने गया था और वह आकर खाना मांगेगा। मातृहृदय प्रेम का आगार होता है। हाथ उसके काम में लगे थे पर मन वेटे के ऊपर ही मंडरा रहा था। दाल को वीनकर प्रभा ने उसे धोया और पतीली के उवलते पानी में डाल दिया। उस में नमक इत्यादि डाल कर वह आटा गूंधने की तैयारी कर ही रही थी कि सामने से उसका प्यारा वेटा कमल भागता हुआ आ गया। मां मां कहता हुआ हांप रहा था। मां ने सारे काम छोड़ वच्चे को हृदय से लगा लिया और पूछाक, या बात है, मेरे लाल ! मेरे बेटे इतना घवराया हुआ क्यों है ? क्या किसी ने तुझे मारा है, डराया है ?

नहीं, नहीं मां, यह सब कुछ नहीं, तू वता, मेरे अन्दर कौन वोलता है ? मेरे अन्दर कौन रहता है ?

अन्दर ? मां ने आश्चर्य से पूछा—पर पहले तू मुझे बात तो वता। कहते हुए मां ने अपने पांच वर्षीय वेटे कमल को गोद में बिठा कर प्यार से पूछा। कमल ने हांपते हुए कहा—मां, आज मैं अपने साथियों के साथ एक तालाव के किनारे चला गया। तालाव में मेंढक उछल कूद मचा रहे थे। हम सव उनको देख-देख कर खुश हो रहे थे तो मां, पता है, वच्चों ने क्या किया ?

....

मुझे क्या पता, क्या किया ? तू ही वता—मां ने हंसकर कहा। कमल वोला—वच्चों ने पत्थर उठा-उठा कर मेंढकों को मारना प्रारंभ कर दिया, यह देखकर मैंने भी एक वड़ा पत्थर उठा लिया। पर मां, ज्यों ही मैंने मारने को हाथ उठाया, मुझे अन्दर से किसी ने कहा—अरे, यह क्या करता है ? मैं डर गया। पत्थर वहां रखकर घर की ओर भागा। देखो मां, मेरा दिल अभी भी ज़ोर से धड़क रहा है। कहते-कहते कमल ने मां का हाथ पकड़ कर

छाती पर रख दिया। अब तू ही बता यह कौन है जिसने मुझे अन्दर से डाँटा।

सुनते-सुनते मां की आँखों में आंसू आ गए, प्यार से कमल के सिर पर हाथ फेरते हुए बोली—बेटा यह भगवान है, और सबके हृदय में रहते हैं। जब कोई बुरा काम करने लगता है तो वे उसे रोकते हैं, और जब कोई अच्छा काम करता है तो शाबाशी देते हैं।

अच्छा मां, कमल ने पूछा—पर और बच्चे क्यों मार रहे थे ? क्या भगवान् उनके अन्दर नहीं रहता ?

नहीं बेटा, भगवान् उनके अन्दर भी रहते हैं, सबको बुरे कामों से रोकते हैं। पर बेटा वे सुनते नहीं, मनमानी करते हैं। पर ऐसा नहीं करना चाहिए।

हां माँ, मैं तो कभी बुरा नहीं करूंगा। पर मां हम तो खेल रहे थे।

पर बेटा, ऐसे खेल क्यों खेलो जो किसी के प्राण ही ले ले। और भी तो खेल खेल सकते हो।

कमल के कोमल हृदय में मां की बुद्धिमत्ता से ईश्वर विश्वास का अंकुर जमा, पौधा बना, पेड़ बना और उसने कमल के सम्पूर्ण जीवन को ईश्वर विश्वास के मधुर फलों से भर दिया। कमल के ईश्वर विश्वासी हृदय ने उसे एक आदर्श विद्यार्थी बनाया, एक सफल विद्वान् बनाया। आगे चल कर वह एक न्यायाधीश बना। वह कभी रिश्वत नहीं लेता, कभी पक्षपात नहीं करता, अन्याय के धन से उसे सख्त घृणा है। स्वयं तो वह शुद्धाचारी है ही, जो उसके संपर्क में आता है वह भी वैसा ही हो जाता।

जब उसको वह दिन स्मरण आता है कि उसकी पूज्या माता ने उसे ईश्वर विश्वास का पाठ पढ़ाया था, उसका हृदय गद्गद् होकर मातृचरणों में झुक जाता है। उसको अब भी प्रत्येक कार्य करते समय अपने अन्दर रहने वाले भगवान से पूछना होता है। यदि किसी काम को करने में उसे तनिक भय या लज्जा अनुभव हो वह उसे तुरन्त छोड़ देता है। वह केवल वही काम करता है जिसकी उसे भगवान प्रेरणा देता है। इसलिए उसके निर्णय उत्तम होते हैं। उसके कार्य प्रभावशाली होते हैं।

आज हमारे देश को कमल जैसे धर्मात्मा व्यक्तियों की आवश्यकता है। परन्तु यह तभी हो सकता है, जब माताए अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरूक हों। शैशव काल में ही उनके कोमल हृदय में ईश्वर विश्वास के बीजारोपण करें। उनको भूत, बाबा, सिपाही या चोर का भय न बता कर सब के हृदय में रहने वाले ईश्वर और उसकी प्रेरणा का ज्ञान करवाएं। तभी वे बड़े होकर राम और कृष्ण बनकर भारत को ऊंचा उठाएंगे।

किसी ने ठीक ही लिखा है—

जिसने शिक्षा पाई धर्म की
मन में किया विश्वास
सौतेली माँ की आज्ञा से
राम गए बनवास

आज वन की कौन कहे ! बच्चे अपनी माँ की आज्ञा से बाज़ार जाने में भी आनाकानी करते हैं। तब भोली मां उसे पैसे का लोभ देकर काम करवाती है। इस प्रकार उसके कोमल हृदय में रिश्वत और लालच का बीज बो देती है, जो उसकी आयु के साथ-साथ पतन कर उसे लोभी और भ्रष्टाचारी बना देता है। केवल यही नहीं, उसे झूठे विश्वास दिलाकर उसे झूठा और अविश्वासी भी बना देती है। कभी-कभी उसके द्वारा लाए गए चोरी के माल की प्रशंसा करके, उसके नकल द्वारा परीक्षा में पास होने पर प्रसन्न हो कर, उसे चरित्रहीनता के गड्ढे में ढकेल देती है।

अब बताइए देश में फैले हुए भ्रष्टाचार अनाचार और स्वार्थ की अग्नि को प्रज्वलित करने का उत्तरदायी कौन है? भारत की नारी, भारत की माँ।

तो जाग, माँ जाग, अपने कर्त्तव्य को पहचान कर बच्चों को ईश्वर विश्वास की शिक्षा दे। उन्हें सत्य प्रेम सिखा। उनको मानव परोपकार की भावनाओं से भरपूर कर।

मैनेजर ने अपने मित्र से कहा' "आज तो मैं बहुत थक गया हूँ। बेवकूफ भी बहुत बना मैं। मेरे एक क्लर्क ने मुझ से कहा कि उस की दादी की मृत्यु हो गयी है अतः वह छुट्टी चाहता है। मैंने कहा कि शव यात्रा में मैं भी चलूँगा तो वह हैरान हो गया।"

"वाह, जवाब नहीं तुम्हारा भी ! तो झूठ पकड़ा गया तुम्हारे क्लर्क का ?"

"बस, यहीं तो मैंने मुँह की खायी। उस की दादी का वाकई स्वर्गवास हो गया था।"

चपरासी: नहीं साहब, आप मैनेजर साहब से नहीं मिल सकते।
आगंतुक: क्यों ? क्या वे कोई फाइल देख रहे हैं ?
चपरासी: नहीं, वे व्यस्त हैं।

—मोहन स्वरूप

चौथी बहू

बात वहुत पुरानी है, एक सेठ जी थे ग्रौर उनकी सेठानी थी। चार थे उनके लड़के ग्रौर चारों के बहुएं। सेठ-सेठानी वृद्ध हुए तो मन में विचारा कि हमारा तो भजन-पूजा का समय है—बहू-बेटों को घर-वार सौंप कर कहीं चलें। सेठानी ने साथ ही यह भी सोचा कि कहीं ऐसा न हो कि पीछे से बहुएं घर वरवाद कर दें इसीलिए किसी समझदार बहू को घर सौंप दें तो मन निश्चिंत हो। यही विचार कर सास ने अपनी बहुग्रों की परीक्षा लेने का निर्णय किया।

सास ने ८-१० दाने गेहूं के लिए। सवसे पहले घर की सवसे बड़ी बहू बुलायी ग्रौर उससे कहा—'ले बहू' इन्हें ले जा और जव मैं मांगू तब मुझे दे दीजो। फिर दूसरी बहू बुलायी ग्रौर उसे भी कुछ गेहूँ के दाने देकर इसी प्रकार कहा। फिर तोसरी ग्रौर अंत में सवसे छोटी बहू को बुलाकर उन्हें भी गेहूं के कुछ दाने दिये ग्रौर उनसे भी यही कहा कि इन्हें ले जाग्रो, जब मैं मांगू तव दे देना।

बड़ी बहू ने गेहूं के वे दाने संभाल कर रख दिये और सोचा कि जब भी सासजी मांगेगी तभी उन्हें दे दूंगी, दूसरी बहू ने गेहूं के दाने उसी समय मुँह में डाल कर चबा लिये ग्रौर सोचा कि जब सासजी मांगेगी तभी दे दूंगी, घर में गेहूँ तो बहुत हैं, दाने-दाने सब एक से हैं, तीसरी बहू ने वे दाने तभी फेंक दिये ग्रौर सोचा कि गेहूँ के दानों में कौन-सी पहिचान पड़ी है, जव सास मांगेगी तभी घर के गेहूँग्रों में से निकाल कर दे दूंगी। चौथी यानी छोटी बहू ने उन दानों को ले कर सोचा कि भला ८-१० दानों को संभाल कर रखवाने से सासजी का

क्या लाभ हो सकता है, अवश्य ही उनकी बात में कोई प्रयोजन छिपा है। उसने कुछ मन ही मन सोचा-विचारा और तत्काल अपने पीहर खबर भेज कर अपने भाई को बुलाया। पीहर से भाई आ गया तो छोटी वहू ने गेहूँ के वे दाने उसे दे दिये और वोली—"भैया, ये दाने ले जाओ और इन्हें अलग मेरे नाम से बुवा देना। जब इनके गेहूं हो जायं तो फिर उन्हें इसी प्रकार से तब तक वोते रहना जब तक मैं खबर न भेजूं। भैया गेहूं के दाने ले आया और उन्हें अपनी वहन के कहने के अनुसार हर साल वोता रहा।

चार-पांच वर्ष बीत गये, एक दिन सास ने सब से वड़ी वहू बुलायी और कहा कि—'वहू, मैंने तुझे जो गेहूँ दिये थे उन्हें ले आ, बड़ी वहू गयी और उसने बक्स खोल कर कपड़े की वह पोटली सी निकाली जिसमें उसने गेहूं बांध कर रखे थे, वह पोटली लाकर उसने सास को दे दी। सास ने पोटली खोली तो देखा कि गेहूं के दाने बिलकुल घुन गये थे।

सास ने दूसरी वहू बुलायी और उससे भी अपने दिये गेहूँ मांगे, वह तुरन्त गयी और घर में से दूसरे उतने ही दाने ला कर सास के हाथ में रख दिये। सास ने कहा कि बहू ये तो मेरे दिये हुए गेहूं नहीं है। वहू बोली—वे दाने तो मैंने तभी मुँह में डाल लिये थे। उनमें और इनमें अंतर ही क्या है?

सास ने फिर तीसरी वहू बुलायी और अपने दिये गेहूं के दाने उस से मांगे, उसने भी दूसरे दाने ला कर दे दिये क्योंकि सास के दिये दाने तो उसने तभी फेंक दिये थे, सास ने कहा कि ये दाने तो और हैं, मेरे दिये दाने कहां हैं, वहू वोली कि वे तो मैंने फेंक दिये थे, वह भी गेहूँ थे, ये भी गेहूं ही हैं।

जव सास ने चौथी वहू बुलायी और उससे भी अपने दिये गेहूं के दाने मांगे, बहू ने कहा कि मुझे चार दिन का समय दे दीजिये तव मैं दूंगी, सास ने उसकी वात मान ली, वहू ने अपने भैया पर खबर भिजवाई कि मेरे दानों से जितने भी गेहूँ हो गये हों उन्हें ले कर आ जाओ, चार दिन वाद भैया ६-७ गाड़ियों में गेहूं भर कर वहन के यहाँ आ

पहुंचा और बोला कि बहिन, ले अपने गेहूँ संभाल, उसने ये सब गेहूँ सासजी के आगे जाकर रखवा दिये और कहा कि आपके दिये दानों के ये गेहूं हैं, छोटी बहू की समझदारी और दूरदर्शिता देख कर सास और ससुर बड़े प्रसन्न हुए।

अब सास ने बड़ी बहू को तो धन सौंपा कि यह बहुत संभाल कर रखेगी, दूसरी बहू को सौंपा रसोई का काम कि ये खाने में चतुर हैं, तीसरी बहू को सौंपा घर की सफाई, यह सोच कर कि यह किसी चीज को रख नहीं सकती—इसे फेंकने का काम दिया जाना ही ठीक है।

चौथी बहू को उन्होंने सब बहुओं के ऊपर हर एक काम और व्यापार सौंपा कि ये तो संपत्ति बढ़ावेगी और कभी कुछ नष्ट नहीं होने देगी।

और इस प्रकार सेठ-सेठानी चारों बहुओं को घर-बार सौंप निश्चित हो भजन-पूजा के लिए चल दिये।

विश्वदानीं सुमनसः स्याम।

—ऋ० ६। ५२। ५॥

हम लोग (विश्वदानीम्) सदा (सुमनसः) प्रसन्नचित्त (स्याम) रहें।

इस सूक्ति में एक बहुत ही सुन्दर उपदेश है। हम सदा प्रसन्न रहें। हम हँसते हुए जीवन व्यतीत करें। प्रसन्न रहने से जहाँ और अनेक लाभ हैं वहाँ स्वास्थ्य भी उत्तम रहता है। दिन में कम से कम एक बार तो खूब जोर से हँसना चाहिये। प्रसन्नता आत्मा को बल और शक्ति देती है। जो व्यक्ति सदा प्रसन्न रहता है उसके सारे दुःख दूर हो जाते हैं। किसी ने बहुत सुन्दर कहा है—

"प्रसन्न-हृदय मनुष्य वह सूर्य है जिसकी किरणें अनेकों हृदयों के शोक-रूपी अन्धकार को दूर भगा देती हैं।"

एक और सज्जन लिखते हैं—

"प्रसन्नता तो चन्दन है; दूसरों के माथे पर लगाइए, तो आप की अँगुलियाँ अपने आप महक उठेंगी।"

—दुर्गावती सिंह

अशर्फियों का घड़ा

किसी गाँव में एक साधु आया। लोग उसके पास रोज जाते। बड़ी भक्ति के साथ उसका प्रवचन सुनते। पर साधु ने देखा कि एक आदमी ऐसा है जो असमय आता है, असमय उठकर चला जाता है और किसी आचार-विचार, नियम-व्रत का पालन नहीं करता।

उसका नाम गनेशी था।

साधु ने गनेशी को बुलाया और समझाया, "बेटा! जीवन में कोई एक नियम अवश्य होना चाहिए। तुम कोई नियम बना लो।"

गनेशी ने कहा, "बाबा! मैं कोई भी नियम नहीं बनाना चाहता। नियम में बँधकर मैं कैदी नहीं बनूँगा। मैं आजाद रहना चाहता हूँ।"

साधु बोला, "बेटा! नियम किसी को कैद में नहीं डालते। तुम कोई भी नियम बना लो और उसी के अनुसार काम करो।"

गनेशी ने कहा, "मुझ से कोई नियम पालन नहीं हो सकता। पर आप कहते हैं, तो मैं यही नियम बनाता हूँ कि अपने घर के सामने रहने वाले कुम्हार का मुख देखकर ही भोजन करूँगा।"

साधु ने भी स्वीकार कर लिया। थोड़े दिनों के बाद महात्माजी तो चले गए, पर गनेशी का नियम चलता रहा।

एक दिन गनेशी को किसी काम से गाँव के बाहर जाना पड़ा। लौटने में देर हो गई। इधर, कुम्हार भी बर्तन बनाने के लिए मिट्टी खोदने जा चुका था। पर गनेशी को नियम-पालन करना था। उसे भूख लग रही थी और नियमानुसार कुम्हार का मुँह देखे बिना वह भोजन कर नहीं सकता था। इसलिए वह कुम्हार की खोज में चल पड़ा।

संयोग से, कुम्हार को उस दिन मिट्टी खोदते समय अशर्फियों से

भरा घड़ा मिला। वह उस घड़े को वोरी में डाल कर गधे पर रखने वाला ही था कि गनेशी आ पहुंचा।

कुम्हार को लगा कि गनेशी ने उसे अशर्फियाँ भरते देख लिया है। इसलिए उसने गनेशी को भी आधी अर्शफियाँ दीं।

देखो, बच्चो ! साधारण-से नियम का पालन करने से गनेशी को कितना लाभ हुआ ?

वच्चो ! सदा एक वात याद रखो। जो भी काम करो, नियम से करो। पढ़ने के लिए यह नियम वना लो कि हम अपना पढ़ा पाठ अवश्य याद करेंगे। एक समय वना लो और नियम से उस समय पढ़ने वैठ जाओ। यह कभी न सोचो कि "अच्छा, फिर कर लेंगे।"

आज से ही नहीं, अभी से ही ऐसा सोच लो, क्योंकि इसके लिए रहीम कवि भी कह गए हैं :

काल करै सो आज कर, आज करै सो अव
पल में परलय होयगी बहुरि करोगे कब ?

आवाहन !

पथ पर जाते कदम बढ़ाते, कहीं न रुकते बढ़ते जाते।
दयानन्द के हम हैं सैनिक ओम् ध्वजा को फहराते॥
निराकार प्रभु जगत् रचयिता हम सब को वतलायेंगे,
ईश्वर वाणी वेद का संदेश 'जन-जन' तक पहुंचायेंगे।
'आर्य' हमारा नाम पुरातन, 'सत्य' को हम अपनायेंगे।
ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों पर आर्य राष्ट्र बनायेंगे।
अंध विश्वास मिटायेंगे, कुरीतियों को दूर भगाते।
पथ पर जाते.........................

शुद्धि वायु की करने की घर घर यज्ञ रचायेंगे।
राम राज्य की करें कल्पना, भ्रष्टाचार मिटायेंगे,
गुरुकुलों में पढ़ते बालक उच्च चरित्र बनायेंगे,
कंजूस नहीं होगा कोई, दानी सभी कहलायेंगे,
हंसते गाते मौज मनाते, भारत माता की जय गाते।
पथ पर जाते.....................

—सत्यप्रकाश आर्य

मुफ्त साहित्य प्रचारक मंगाएं। मासिक पुस्तकालयों को केवल ६० पैसे डाक व्यय लेकर वर्ष भर भेजा जाएगा। विज्ञापन का उत्तम साधन है। नमूना मुफ्त मंगाएं।

पंडित जयदेव ब्रदर्स आत्माराम मार्ग कारेली बाग बड़ौदा

अपनी

आवश्यकताओं

वर-वधू

नौकरी आदि

की आवश्यकताओं

के लिये

जन-ज्ञान

में

विज्ञापन दीजिए

वेदोपदेश

तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥

ऋ० ५।२४।४॥

पदार्थ—हे (शोचिष्ठ) ज्योतिः स्वरूप वा पवित्र स्वरूप पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (दीदिवः) प्रकाशमान (तम्त्वा) उस सर्वत्र प्रसिद्ध आपसे (सुम्नाय) अपने सुख के लिये (सखिभ्यः) मित्रों के लिये (नूनम्) अवश्य (ईमहे) याचना करते हैं।

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप प्रकाश देने वाले पतिपावन जगदीश ! ग्रापसे अपने और अपने मित्रों और वान्धवों के सुख के लिये प्रार्थना करते हैं। हम सब आपके प्यारे पुत्र, आपकी भक्ति में तत्पर होते हुए इस लोक और परलोक में सदा सुखी रहें। हम पर ऐसी कृपा करो।

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि।
अप नः शोशुचदघम् **ऋ० ॥१।९७।६॥**

पदार्थ—हे (विश्वतोमुख) परमात्मन् ! ग्रापका मुख सब दिशाओं में है। ग्राप सब ओर देख रहे हैं। आप (विश्वतः) सर्वत्र (परिभूः ग्रसि) व्याप्त हैं, (नः) हमारे (ग्रघम्) पाप (ग्रप शोशुचत्) सर्वथा विनष्ट हों।

भावार्थ—हे विश्वतोमुख सर्वद्रष्टा परमात्मन् ! आप सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त हैं, अतएव आपका नाम विश्वोतमुख है। आप ग्रपनी सर्वज्ञता से, सब जीवों के हृदय के भावों को और उनके कर्मों को जानते हैं, कोई वात आपसे छिपी नहीं। इसलिये हमारी ऐसी प्रार्थना है कि, हमारे सब पाप ग्रौर पापों के कारण दुष्ट संकल्पों को नष्ट करें। जिनसे हम ग्रापके सच्चे ज्ञानी और भक्त बन सकें। ●

*

आर्यसमाज के गौरव और प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् आचार्य श्री पं० वैद्यनाथ जी शास्त्री की अध्यक्षता में आर्य कन्या महाविद्यालय अम्बाला छावनी का ऋषिबोधोत्सव मनाया गया। चित्र में आचार्य जी विद्यालय की आचार्या श्रीमती शान्ता एम० ए० व विद्यालय के मन्त्री डा० हरिप्रकाश जी के साथ उत्सव स्थल पर जाते दिखायी पड़ रहे हैं।

अम्बाला छावनी में यह उत्सव प्रति वर्ष अत्यन्त प्रभावशाली रूप में मनाया जाता है।

—सम्पादक

किसी ने श्री चतुरसेन गुप्त से पूछा, क्या चाहते हो तो उत्तर मिला छुटकारा। किस से ? देश में फैले हुए अन्धकार से।

राजधानी के प्रसिद्ध वकील श्री सोमनाथ (मरवाह) जो सार्वदेशिक सभा के कोषाध्यक्ष भी हैं—उन से यही पूछा गया तो उत्तर था कि आर्य समाज की गाड़ी को राजधानी एक्सप्रेस जैसी तेज कैसे चलाया जाए ? वे यही सोचते रहते हैं।

और यही प्रश्न जब पूछा गया सार्वदेशिक अनुसंधान विभाग के अध्यक्ष आचार्य वैद्यनाथ जी से तो वे बोले—ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों का प्रचार प्रसार कैसे हो ? मैं तो यही सोचता रहता हूँ—

और जब "दयानन्द-संस्थान" के अध्यक्ष पं० भारतेन्द्रनाथ से पूछा गया कि आप क्या चाहते हैं तो उनका उत्तर था आर्य समाज संगठन को ऋषि दयानन्द की राह पर चलाना और सारी धरती को ऋषि दयानन्द के चरणों में झुकाना।

चारों उत्तर में शब्द अलग-अलग भले ही हों पर सब का भाव एक था। आओ ! युग को बदलें और संसार के प्रत्येक मन मन्दिर पर वेद की पावन पताका लहराएं—चित्र में चारों व्यक्ति मुस्कराते हुए आप से भी पूछते प्रतीत हो रहें हैं कि बताओ—ऋषि दयानन्द की विजय के लिए आप क्या करोगे ? --सम्पादक

सज्जन-अमृत

सभी प्राणियों का स्वामी एक ही है; और वह 'सत्य'।
सभी मानवों का उपास्य एक ही है; ग्रौर वह 'सत्य'।
सभी धर्मों की नींव एक ही है; और वह 'सत्य'।
सभी कर्मों का श्री गणेश एक ही है; और वह 'सत्य'।

किन्तु खेद, ग्राज मानव सत्य तज असत्य को ग्रपना रहा। इसीलिए तो परिणाम भी देख लो विपरीत (अशान्ति) पा रहा !

(२) ईशसुमिरन-पश्चात्, ईश-आज्ञा : कार्य उत्तम ! अवकाश समय तो सुमिरन ही कितना ग्रत्युत्तम। पर, काम करते-करते भी, क्या नहीं सम्भव ? अवश्य सम्भव, पूर्ण सत्य ज्ञान हो जो प्राप्त !

(३) मानव ! आर्य (श्रेष्ठ) का नाम है ! देखो तो श्रेष्ठ, तुम्हारा काम है ? नहीं, तो ग्रनार्यदानव नाम है ! कि काम जो, निकृष्ट काम है-यथा ग्रसत्य, अन्याय, अहित !

(४) संप्रदाय अनेक क्यों ? एक क्यों नहीं ? विचार उन, एक (समान) जो नहीं—ग्रर्थात् अलग अलग ! ग्रलग अलग ही तो, ग्रलग करे। एकता, सुख, शान्ति फिर कैसे ?

(५) सत्य व पूर्ण विचार, 'वेद' में ही। ग्रादि सृष्टि से 'ग्रादि गुरु' का ही ! अतः विश्व-शान्ति, कल्याण करने वाला वेद ही ! अन्य देख लें : कोई भी नहीं !

(६) शिक्षा-उपदेश मनुष्य को ३० साल से पहले भाते नहीं। इसलिए तो उसके पास शांति आदि ग्राते नहीं ! हाँ, वह तो वड़ा ही भाग्यशाली; जिसने वाल्यावस्था से शिक्षा मानी !

(क) जो करे तो क्या, सुने भी न थोड़ा-भी भला।
सचमुच, नहीं दुनियाँ में वदनसीव उस-सा !
जो सुन-के भी, लग जावे करने कुछ भी भला।
निश्चय ही खुल गया उसका सौभाग्यद्वार वड़ा !

—सज्जन

हम आर्यसमाज का सन्देश फैलाने में लगें

●

—श्री सोमनाथ
एडवोकेट
कोषाध्यक्ष सार्वदेशिक
आर्य प्रतिनिधि सभा
दिल्ली

देश में और विदेश में सर्वत्र अज्ञान फैला है। विज्ञान के विकास के साथ ही मानसिक ज्ञान का ह्रास हुआ है। धर्म का सही रूप दुनियाँ को हम नहीं बता सके हैं। परिणाम यह है कि सर्वत्र धर्म के नाम पर अधर्म फैल रहा है।

आर्य समाज का यह दायित्व है कि वह अपने उपदेशकों, प्रचारकों, संन्यासी, महात्माओं द्वारा वेद का संदेश सर्वत्र फैलाएं। उच्च कोटि के साहित्य द्वारा बुद्धिजीवी वर्ग को प्रभावित किया जाए और हमारा अपना जीवन इतना ऊंचा हो जिसे देखकर दूसरों पर प्रभाव पड़े और वे हमारे जीवन से शिक्षा ले सकें।

हम काम अधिक करें, बातें कम। अपने जीवन को सुधारें, परिवार को आर्य बनाएं और आर्य समाज संगठन को रचनात्मक कामों में लगाएं। १९७५ में आर्यसमाज शताब्दी तक हम अधिक से अधिक व्यक्तियों तक पूरी शक्ति से आर्य समाज का संदेश पहुँचाएं, तभी सफलता हमारे पास आएगी और हम ऋषि ऋण से उऋण हो सकेंगे। हमें सभा द्वारा प्रकाशित चारों वेदों के भाष्य का पूरी शक्ति से प्रचार करना चाहिये। साथ ही हम अपने बच्चों को आर्य बनाने के लिए गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली का भी उद्धार करें तभी कल्याण है।

राष्ट्र के तपस्वी सन्त और योगी श्री स्वामी योगेश्वरानन्द जी विदेशों की अतृप्त आत्माओं तक योग का सन्देश पहुँचा, ज्ञान-गंगा से भौतिकवादी जगत् को पवित्र कर ९ मास पश्चात् जब दिल्ली आए तो आप ने "दयानन्द-सस्थान" में पधार हमें अपना आशीर्वाद दिया। संस्थान के अध्यक्ष पं० भारतेन्द्रनाथ हिमालय के महान् योगी का पुष्पहार से स्वागत् कर रहे हैं।

स्वामी जी की विदेश यात्रा का वर्णन अगले अंक में पढ़िए।

—सम्पादक

श्री स्वामी योगेश्वरानन्द जी के साथ "दयानन्द-संस्थान"
के द्वार पर—चित्र में पं० दीनानाथ जी सिद्धान्तालंकार
और श्री चन्द्रमोहन शास्त्री और जन-ज्ञान की
सम्पादक श्रीमती राकेश रानी भी परिवार
सहित खड़ी हैं। स्वामी जी ने संस्थान
के कार्यों की सराहना करते हुए
आगे बढ़ने का निर्देशन
भी दिया।

"जन-ज्ञान" के नियम

१. "जन-ज्ञान" "दयानन्द संस्थान" का मासिक मुख पत्र है। इसका उद्देश्य—(क) महर्षि दयानन्द के लक्ष्य को पूर्ण करना (ख) संसार के प्रत्येक व्यक्ति तक वेद का पावन संदेश पहुँचाना और (ग) अज्ञान, पाखण्ड की समाप्ति के लिए प्रत्येक सम्भव पग उठाना है।

२. "जन-ज्ञान" में व्यक्तिगत राग-द्वेष और पार्टीवाजी के लेख व सूचनायें किसी भी स्थिति में प्रकाशित नहीं किये जायेंगे।

३. वैदिक सिद्धान्तों के विरुद्ध विज्ञापनों का प्रकाशन भी किसी स्थिति में **नहीं होगा।**

४. "जन-ज्ञान" का वार्षिक शुल्क दस रुपया, एक प्रति एक रु० है। सदस्यों को विशेषांक वार्षिक मूल्य में दिये जायेंगे।

५. प्रत्येक माह की **दो-तीन तारीख को** 'जन-ज्ञान' भेज दिया जाता है। यदि दस तक भी न मिले तो समझिये कि आपका 'जन-ज्ञान' कोई और पढ़ रहा है। दस तारीख तक 'जन-ज्ञान' न मिले तो अपने पोस्ट आफिस को पत्र लिखें और उसकी एक प्रति हमें भेजें। पत्र प्राप्त होने पर 'जन-ज्ञान' दुबारा बिना टिकट लगाये बैरंग भेजा जायेगा। **बीस तारीख के बाद या बिना पोस्ट मास्टर को लिखे पत्र की प्रतिलिपि के किसी भी शिकायती पत्र पर ध्यान नहीं दिया जायेगा।**

६. विशेषांक सुरक्षित मंगाने के लिए १ रुपये के टिकट पन्द्रह दिन पूर्व आने चाहियें। विशेषांक किसी भी स्थिति में दुबारा न भेजे जायेंगे।

७. **पत्र-व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक संख्या लिखना न भूलें।**

८. समस्त ड्राफ्ट, मनीआर्डर आदि 'जन-ज्ञान' **Jan-Gyan** के नाम भेजें। दिल्ली से बाहर के व्यक्ति चैक न भेजें।

९. नये सदस्य धन भेजते समय **'नया सदस्य'** शब्द अवश्य लिखें और मनी-आर्डर कूपन पर पता अवश्य लिखें।

१०. "जन-ज्ञान" के सदस्यों को 'जन-ज्ञान प्रकाशन' द्वारा प्रकाशित सम्पूर्ण साहित्य पौने मूल्य में दिया जायेगा।

११. जिस मास में आपका शुल्क समाप्त हो रहा हो उससे एक मास पूर्व अगले वर्ष का शुल्क हमारे कार्यालय में आ जाना चाहिये। अन्यथा समाप्ति से पूर्व का अंक वी. पी. से भेजा जायेगा। जो सदस्य न रहना चाहें वे भी एक मास पूर्व सूचित कर दें।

प्रबन्धक

जन-ज्ञान (मासिक)

१५९७, हरध्यानसिंह रोड़, करौल बाग,

नई दिल्ली-५

फोन : ५६६६३९

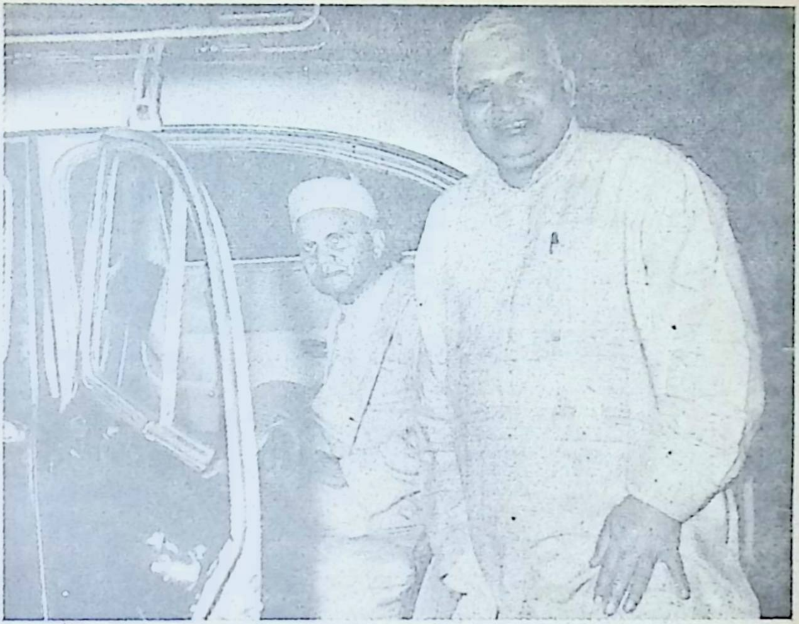

संस्थान से विदा के क्षणों में फोटोग्राफर का कैमरा जागरूक था
कार में स्वामी योगेश्वरानन्द जी के बैठते ही उसने बटन दबा
दिया। स्वामी जी कार में बैठ चुके हैं और संस्थान के
अध्यक्ष पं० भारतेन्द्र नाथ दरवाजे के पास खड़े हैं।
स्वामी जी की मुस्कराहट उनके आशीर्वाद
की सूचक है।

—:※:—

सत्यार्थप्रकाश छपाने के लिये उदारतापूर्वक धन दीजिये। २५०) देने वालों का नाम छपेगा। १०००) देने वालों का चित्र ऋषि जीवन में छपेगा। —संपादक

—दिनेश पालीवाल

जल्दी मरने के लिये—

बीमार रहने के लिये—

खाइये...... खूब............

अण्डे खाइये

बीमारियां दिल की हों या पेट की खूब बढ़ रही हैं। वैज्ञानिकों का कहना है कि इन सब का कारण है मांस और अंडे। हमारी सरकार भी अंडों के खाने के प्रचार में लग पड़ी है। क्या मांसाहारी व्यक्ति और शासक इस लेख को पढ़ अपनी आंखें खोलेंगे ?

—संपादक

जो लोग अंडे खाने से शुरू में काफी स्वस्थ से दिखायी देते हैं, वे अपने स्वास्थ्य पर फूलें नहीं। वैज्ञानिकों का मत है कि उन का स्वास्थ्य नकली है और बहुत जल्दी उन्हें अपने पुराने स्वास्थ्य से भी हाथ धोना पड़ जायेगा। यानी वे तरह-तरह की बीमारियों के शिकार हो जायेंगे और पुनः स्वस्थ होने के लिये डॉक्टरों और वैद्यों के चक्कर लगाने लगेंगे।

बापू ने कहा था कि इस देश की जलवायु को देखते हुए अंडे, मांस और मदिरा का पूर्ण बहिष्कार होना चाहिए। वास्तव में बापू आज दूरदर्शी सिद्ध हो रहे हैं। भारत की जलवायु इन चीजों के लिए उपयुक्त नहीं है। आप यह जान कर भी अचरज करेंगे कि अपने देश में ही नहीं, विदेशों में भी अब शाकाहारी भोजन की महत्ता स्वीकार की जाने लगी है। बर्नार्ड शा जैसे

मूर्धन्य नाटककार ने जीवन पर्यन्त शाकाहारी भोजन किया और शराब कभी ओठों से नहीं लगायी।

हाल में एक रूसी की १६० वर्ष की उम्र में मृत्यु हुई। उस ने अपनी मृत्यु के समय पत्रकारों को दीर्घजीवन का रहस्य बताया—शाकाहारी भोजन। हर परिस्थिति में प्रसन्न रहना। गमों और चिन्ताओं को पास न फटकने देना। सुबह दूर तक खुली हवा में टहलना। जहाँ तक हो सके खुली हवा में ही रहना। दिन भर कठोर परिश्रम करना। कभी जल्दबाजी में काम न करना। रात को बेफिक्र हो कर सोना।

सामिष भोजन से हानि के बारे में अमरीकी वैज्ञानिकों द्वारा की गयी खोजों से आतंकित होकर पश्चिमी देशों के लोग अब तेजी से शाकाहारी होते जा रहे हैं। अकेले अमरीका में अब चार करोड़ से अधिक लोग शुद्ध शाकाहारी हैं।

फ्लोरिडा विश्वविद्यालय (अमरीका) के कृषि विभाग ने १९६७ में एक स्वास्थ्य बुलेटिन में बताया था कि अंडे में हानिप्रद विषाणु (वाइरस) होते हैं।

कैलिफोर्निया के दो वैज्ञानिकों डा० कैथरीन निम्मो तथा डां. जे. अमेन ने एक समाचार प्रसारित किया कि अडे में 'कालेस्ट्राल' नामक विष पाया जाता है, जो हृदय-रोग का एक प्रमुख कारण है। उपर्युक्त वैज्ञानिकों ने अपनी खोजों से यह सिद्ध किया कि अंडे खाने से आदमी हाई ब्लडप्रेशर का शिकार हो जाता है, जो बाद में हृदय-रोग में बदल जाता है, अंडे खाने से जिगर को कई प्रकार की बीमारियां हो जाती हैं और पाचन गड़बड़ा जाता है। यही नहीं, इस से गुर्दे में पथरी उत्पन्न हो जाती है; आमाशय, आंत और रक्तनलिकाओं में घाव हो जाते हैं। आमाशय और आंत के घाव तमाम रोगों के जीवाणुओं को रोग फैलाने का अवसर प्रदान करते हैं। रोगों से बचने की शक्ति क्षीण हो जाती है। पेचिश के लिये भी अंडे जिम्मेदार हैं क्योंकि घायल आंतों में इन के कीटाणु पनपते हैं।

रक्त-नलिकाएँ शरीर की अत्यंत कोमल रचनाएँ हैं जिन के लचीलेपन पर ही हमारा जीवन निर्भर है। आदमी जो क्रमशः बूढ़ा होता है उस का मुख्य कारण है रक्त नलिकाओं का लचीलापन कम होना। रक्त-नलिकाएं क्रमशः मोटी होती जाती हैं और उन का लचीलापन खत्म होता जाता है, जिस के कारण उन का भीतरी भाग जिस में होकर रक्त बहता है, सँकरा होता जाता है और रक्त के सामान्य प्रवाह में बाधा उत्पन्न होती जाती है। इसी बाधा के कारण ब्लड-प्रेशर बढ़ता चलता है। शरीर के सारे अंगों में ठीक से रक्त वितरित नहीं हो पाता। फलस्वरूप, अंगों और माँस-पेशियों

को अपने श्रम के अनुपात में न तो पर्याप्त भोजन मिल पाता है और न ही ऑक्सीजन। अंगों तथा मांस-पेशियों का क्षय होना शुरू हो जाता है। खाल सिकुड़ने लगती है और आदमी बूढ़ा तथा अशक्त होने लगता है। जिन रक्त-नलिकाओं के लचीले न रहने से हम बूढ़े और अशक्त होने लगते हैं, अगर वे अंडों की वजह से घायल और रहने लगें तो क्या होगा? न केवल तरह-तरह की बीमारियों के जीवाणुओं को शरण मिलेगी, बल्कि खतरनाक पदार्थ 'कॉलेस्ट्राल' को भी नलिकाओं की भीतरी सतह पर जमने का अवसर मिलेगा। फलस्वरूप नलिकाओं का भीतरी भाग और तेजी से सँकरा होगा और सामान्य रक्त-भ्रमण में बहुत ज्यादा बाधा उत्पन्न होने लगेगी। इस का दुष्परिणाम हो सकता है हृदय-गति का बंद होना।

उपर्युक्त खोजों के प्रकाश में आते ही संसार के वैज्ञानिक न केवल चकराये बल्कि वे इन तथ्यों की जांच-पड़ताल में भी जुट गये। अमरीकी वैज्ञानिकों की घोषणाएं सत्य पायी गयीं। साथ ही कुछ नये तथ्य सामने आये जो और ज्यादा चौंकाने वाले थे।

इंगलैंड के वैज्ञानिकों डॉ. राबर्ट ग्रास, इरविंग, डेविडसन तथा प्रो. ओकाडा ने अंडों के प्रभाव का आमाशय पर परीक्षण किया। उन्होंने पाया कि जो लोग लगातार अंडे और अंडों से बनी चीजें खाते रहते हैं, उन की पाचन शक्ति बिगड़ जाती है। बाद में व्यक्ति पेचिश का स्थायी रोगी हो जाता है। पेट में गैस की बीमारी भी हो जाती है। कुछ रोगियों को तो आंतों और आमाशय की तपेदिक का शिकार होते भी देखा गया है।

यहां अपना व्यक्तिगत अनुभव भी बता देना अनुपयुक्त न होगा। मुझे कुछ डॉक्टरों ने अंडे खाने की सलाह दी थी। सुबह-शाम दूध में अंडे लेता, कभी-कभार आमलेट भी खाता और खुश होता कि बस अब हुआ ताकतवर!

दो तीन महीने गुजरे होंगे कि पेट में दर्द रहने लगा। आंतों में ऐंठन और कलेजे में बुरी तरह जलन महसूस होने लगी। गैस की बीमारी भी हो गयी और 'इसानोफीलिया' होने लगा। आखिरकार डॉक्टरों के पास जाना पड़ा। दवाओं से कुछ समय के लिये राहत हुई। लेकिन स्वास्थ्य बनाने के चक्कर में अंडे खाना बन्द नहीं किया था। थोड़े दिन बाद ही सारी तकलीफें फिर पैदा हो गयीं। आंतविशेषज्ञ के पास गया। उसने सारी तकलीफ सुन कर तुरन्त पूछा, "अंडे तो नहीं खाते हो?"

मैं चकराया। हैरानी से बोला, "जी, अंडे तो रोज खा रहा हूँ।" वे हँसते हुए बोले, "आज से अंडे खाना बिल्कुल बन्द कर दो। दवा की कोई खास जरूरत नहीं है। अपने आप ठीक हो जाओगे।" विशेषज्ञ की बात मानते ही कुछ दिनों में अपने आप पेट की सारी व्याधि दूर हो गयी।

डॉ. ई. वी. एम. सी. कोनलाम की अमरीका में बहु-प्रचलित पुस्तक "पोषण का नवीनतम ज्ञान' में लिखा है—"अंडों में कैल्शियम तथा कार्बोहाइ-डेट्स की कमी होती है। इस कारण भोजन का आमाशय में फर्मेंटेशन बड़ी तेजी से होता है और भोजन सड़ने की प्रक्रिया से गुजरने लगता है। आमाशय में भोजन का सड़ना अच्छी बात नहीं है। इस में आमाशय के रोग होने लगते हैं। कब्ज हो जाता है जिस से अनेक रोगाणुओं के पनपने का अवसर मिल जाता है। पेट में दर्द रहने लगता है। कलेजे और जिगर में जलन और आंतों में ऐंठन होने लगती है। झुँझलाहट, गुस्सा और उत्तेजना रहने लगती है और व्यक्ति जिंदगी से बेजार हो उठता है।" (पृष्ठ १७१)

डॉ. डोन्हा, ने जो इंगलैंड के विख्यात चिकित्सक हैं, 'बीमारियों की प्रकृति' पत्रिका में एक लेख लिख कर लोगों को अंडों से सावधान किया है! वे लिखते हैं—"यह क्या मूर्खता है कि आर्थिक नीतियाँ और योजनाएँ अंडों के उत्पादन को बढ़ाने में लगी हुई हैं, जो वस्तुतः विषों को उत्पन्न करते हैं और आंतों तथा रक्त-वाहिनियों में घाव पैदा करते हैं। अंडे आदमी के लिए कतई लाभकर नहीं हैं।"

इंगलैंड के ही एक और डॉक्टर आर. जे. वियलम कहते हैं—"हो सकता है, अंडे खाने से शुरू में कुछ लोग अपने को अधिक स्वस्थ महसूस करें और दूसरों को भी दिखायी दें। बाद में वे कई बीमारियों के शिकार हो जाते हैं, जिन में छाजन (एग्जिमा) और लकवा काफी खतरनाक है।"

हार्वर्ड मेडीकल स्कूल (अमरीका) के चिकित्सक डॉ. ए. वाचमैन अपने अपने सहयोगी डॉ. डी. एस. बर्नस्टीन के साथ एक विशेष अध्ययन में जुटे। विषय था—मनुष्य के लिए मांसाहार अधिक उपयुक्त है या शाकाहार ? यहाँ यह बता देना भी उपयोगी होगा कि शाकाहारी प्रकृति के जीवों को प्रकृति ने अत्यन्त लंबी आंत प्रदान की है, जो करीब अड़तालीस फुट लंबी होती है। मांसाहारियों को प्रकृति ने छोटी आंत दी है। मासाहारियों में दांतों की रचना शाकाहारियों से भिन्न होती है। ये दोनों बातें साबित करती हैं कि मनुष्य को प्रकृति ने शाकाहारी बनाया है।

उपर्युक्त दोनों डॉक्टरों ने अध्ययन के बाद एक रिपोर्ट प्रकाशित की, जिस में उन्होंने घोषणा की कि मांसाहार से हड्डियां क्रमशः कमजोर होती और गलती हैं। शाकाहारियों की हड्डियां मांसाहारियों की अपेक्षा अधिक मजबूत होती हैं। मांसाहारियों के मूत्र में क्षारीय पदार्थ तथा लवणों की अधिक मात्रा बह कर शरीर से बाहर जाती है, जिस से इन लवणों और क्षारीय पदार्थों की रक्त में कमी होने लगती है। रक्त अपनी इस कमी को

हड्डियों से लेकर पूरी करता है। इस आवश्यक संतुलन के बिगड़ने पर व्यक्ति प्रतिरोध-शक्ति खो बैठता है।

डॉ. एलेग्जेंडर हैक ने उक्त दोनों डाक्टरों के परीक्षणों की पुष्टि करते हुए बताया कि रक्त में इन लवणों और क्षारीय पदार्थों का गुर्दों के माध्यम से छन कर तेजी से बाहर जाने का कारण यह है कि मांस के पाचन में शरीर में ताप अधिक उत्पन्न होता है। इस अतिरिक्त ताप के कारण गुर्दों की रक्त छानने की प्रक्रिया बहुत तेज हो जाती है और 'बोमन कैप्स्यूल्स' में ये लवण तथा क्षार अतिरिक्त दाब के कारण छनने से बच नहीं पाते और मूत्र के साथ बह कर बाहर चले जाते हैं। हड्डियां क्रमशः कमजोर होती रहती हैं। रासायनिक प्रक्रियाओं के असंतुलन के कारण कई दूसरे रोग पैदा हो जाते हैं।

वैज्ञानिकों ने बताया है कि मांसाहारियों को रक्त में लवणों और क्षारीय पदार्थों की कमी को दूर करने के लिये फलों, सब्जियों, दूध आदि पदार्थों का प्रयोग बढ़ा देना चाहिए। इस से इन का रक्त में संतुलन बना रहेगा।

भ्रम-निवारण

अनेक 'जन-ज्ञान'-सदस्यों के पत्र आए हैं कि हमें अभी तक भी सत्यार्थप्रकाश नहीं मिला। ऐसे सभी पत्रों के उत्तर में निवेदन है कि 'सत्यार्थप्रकाश' केवल उन्हीं को भेजा गया है जिन का आदेश हमें प्राप्त हुआ था। सत्यार्थप्रकाश विशेषांक नहीं था। अतः 'जन-ज्ञान' के सदस्यों को भेजना संभव न था। एक प्रति मंगाने पर २) डाक व्यय ही लगता है। अतः जो मंगाना चाहें वे मूल्य और २) डाक व्यय के लिए भेज दें।

—प्रबन्धक

॥ ओ३म् ॥

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम

[संक्षिप्त जीवन-गाथा]

—लेखक—

पं० दीनानाथ सिद्धान्तालंकार

मूल्य—बढ़िया सफेद कागज पर ८० पैसे, ५०) सैकड़ा

—०×०—

प्रकाशक—

जन–ज्ञान–प्रकाशन

नई दिल्ली-५

अपनी ओर से

'राम' भारत के रोम-रोम में रमे हैं। भारतीय संस्कृति पर 'राम' की अमिट छाप है। 'राम' का जीवन भारत का आदर्श है। ग्रामों में राम-राम नमस्ते के स्थान पर सर्वत्र प्रचलित है।

गहरायी से देखा जाए तो हमारे धर्म के रक्षक-प्रहरी राम-प्राण भावना के प्रतीक वन गए हैं। उनकी अमर गाथा महर्षि वाल्मीकि ने लिखी और वह कल्पना का पुट लेकर तुलसी कृत रामायण के रूप में घर-घर फैली। इससे जहाँ राम की गौरव गरिमा फैली वहां यह हानि भी हुयी कि राम के वास्तविक स्वरूप को हमने भुला दिया और विकृत रामलीला का रूप उभरा।

वे महान् अनुपम और श्रेष्ठ आर्य थे। उन का जीवन असुर दल, रावणादि के संहार में व्यतीत हुआ। कर्मबोध उन के मन-प्राण की प्रेरणा था। राज्य और वनवास को उन्होंने समान समझा और वे भारत के ही नहीं विश्व के आराध्य बन गए।

राम ईश्वर के अनन्य भक्त और यज्ञादि के रक्षक थे। अतः उन की पावन जीवन लीला आज भी हमारी प्रेरणा का अजस्र स्रोत है।

हम चाहते हैं कि सम्पूर्ण राम-भक्त आज भारतीय संस्कृति-सीता के अपहरण के विरुद्ध, बढ़ते अधर्म-रावण के विरुद्ध मानस-बाण उठाएं। हम राम के अनुयायी भारत भूमि को अधर्म से शून्य कर दें।

धर्म की पुकार राम ने सुनी थी और वे भगवान् कहलाए—हम उन के अनुयायी उन के मार्ग पर चल धर्म-रक्षा के लिए यदि आज कृतसंकल्प हों तो 'राम' के आदर्श की रक्षा हो सकेगी अन्यथा.....................

राम मर्यादा पुरुषोत्तम थे। उन की मर्यादाएं टूट रही हैं। रावण बढ़ रहे हैं—धर्म मिट रहा है—मन पूछता है कि क्या राम के करोड़ों उपासक एक वार फिर पाप की लंका पर विजय के लिए आर्य ध्वजा उठा विजय-अभियान आरम्भ नहीं कर सकते ?

आप भी हमारी भावना के अनुसार सोच सकें—इस हेतु राम का यह संक्षिप्त जीवन राम-भक्तों को अर्पित है।

---भारतेन्द्र नाथ

वाल्मीकि का नारद से प्रश्न

नारद ऋषि अपने आश्रम में

तपस्या में रत और स्वाध्याय में संलग्न थे। इसी समय वाल्मीकि मुनि वहां आ गये। नारद ने कुशल क्षेम और यथोचित आतिथ्य आदि के पश्चात् वाल्मीकि मुनि से पूछा—भगवन् ! मेरे लिये क्या आज्ञा है ? आपका आदेश पालन कर मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। वाल्मीकि ने कहा:—मैं आपसे यह पूछने आया हूं कि :—

इस समय संसार में कौन ऐसा व्यक्ति है जो गुणवान्, शूरवीर, धर्मज्ञ, कृतज्ञ और अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहने वाला हो, सदाचार से युक्त, सब प्राणियों का हित करने वाला, विद्वान् सामर्थ्यवान् और प्रियदर्शन हो, धैर्यशील, काम, क्रोध आदि शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाला, सुन्दर, ईर्ष्या तथा निन्दा न करने वाला, युद्ध में शत्रुओं का नाशक,—इत्यादि सब गुण जिसमें हों, मैं ऐसे व्यक्ति का पूरा इतिहास जानने के लिए उत्सुक हूं। हे नारद ! आप तो समस्त संसार में विचरण करने वाले हैं। आप से अधिक उपयुक्त कौन ऐसा व्यक्ति है जो मेरी इस जिज्ञासा को पूरा कर सके।

वाल्मीकि मुनि के प्रश्न से नारद ऋषि बड़े प्रसन्न हुए। हर्ष-विभोर हो बोले :—

आपने जिन दुर्लभ गुणों का वर्णन किया है मैंने उन पर पूर्ण विचार किया है और इस समय भूतल पर इन उपर्युक्त गुणों से समन्वित जो एक मानव है, उसका वृत्तान्त ध्यान से सुनिए।

नारद का उत्तर—राम सर्वश्रेष्ठ मानव।

नारद ने कहा—ऋषिवर ! इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न संसार में विख्यात श्रोराम इस युग के ऐसे व्यक्ति हैं जिनका मन सदा अपने वश में रहता है, बलवान्, तेजस्वी, धैर्यशील और जितेन्द्रिय हैं। श्री राम बुद्धिमान्, नीतिज्ञ, मधुरभाषी, शत्रुनाशक, विशाल कन्धों वाले, गोल और मोटी भुजाओं वाले, शंख के सदृश गर्दन वाले, बड़ी ठोड़ी वाले और भारी धनुष को धारण करने वाले हैं। उनकी गर्दन की हड्ड्यिां माँस से छिपी हुई हैं। वे शत्रु का दमन करने वाले हैं। उनकी भुजाएं घुटनों तक आती हैं, उनकी नस-नाडियां दृढ़, माथा चौड़ा और अच्छे विक्रमशाली हैं।

नारद ने बताया कि श्रीराम के अंगों का विकास एक समान है, उन के शरीर का रंग चिकना एवं सुन्दर है। वे बड़े प्रतापी, उभरी हुई छाती वाले, विशाल नेत्र, सुन्दर अंग—प्रत्यंगों वाले और शुभ लक्षणों से युक्त हैं। श्रीराम धर्मज्ञ, साम्प्रतिज्ञ, परोपकारी, नीति युक्त, ज्ञान निष्ठा, पवित्र और समाधि में बैठने वाले हैं। श्री राम प्रजा रक्षक शोभावान् और सब के पोषक हैं। प्राणीमात्र के रक्षक धर्मप्रवर्तक, स्वजनों के पालक, वेद वेदांगों के ज्ञाता और धनुष विद्या में चतुर हैं। श्री राम शास्त्रों के जानने वाले, उत्तमस्मरण शक्ति युक्त, प्रतिभाशाली, सर्वप्रिय, सज्जन, कभी दीनता न दिखाने वाले और प्रतिभाशाली हैं।

नारद ने कहा—जिस प्रकार नदियां समुद्र में पहुंचती हैं, उसी प्रकार श्री राम के पास सदा श्रेष्ठ पुरुषों का समागम रहता है। वे आर्य हैं, समदृष्टि हैं और प्रिय दर्शन हैं। श्री राम सब गुणों से युक्त, अपनी माता कौशल्या के आनन्द को बढ़ाने वाले और गम्भीरता में समुद्र के समान तथा धैर्य में हिमालय के सदृश हैं। पराक्रम में विष्णु के सदृश, प्रिय दर्शन में चन्द्रमा सदृश, क्षमा में पृथिवी की भांति और क्रोध में कालाग्नि समान हैं। श्री राम दान देने

में कुबेर के समान और सत्य भाषण में मानो साक्षात् धर्म स्वरूप हैं।

ऐसे महिमाशाली पुरुष पुंगव के विशिष्ट गुणों का परिचय उनके जीवन चरित्र से ही मिल सकता है। नारद मुनि से श्री राम का पावन धर्म-अर्थ युक्त और सब जनों के लाभकारी चरित्र सुन वाल्मीकि ऋषि ने उन्हें कथा सूत्र में बांध दिया। इसी का नाम रामायण है, अर्थात् राम का पूरा वृत्तान्त। इसलिए हम अपने पाठकों को संक्षेप से राम का इतिहास सुनाते हैं।

———

राम-कथा

सरयू नदी के किनारे प्रसन्न जनों से पूर्ण समृद्धि-सम्पन्न और धन-धान्य से पूर्ण कोशल नामक जनपद था जिसकी राजधानी अयोध्या नगरी थी। लम्बी-चौड़ी सड़कों से शोभायमान, जिसके दोनों ओर विशाल अट्टालिकाएं थी, बीच-बीच में उद्यान और सौन्दर्य वर्धक वृक्षों की पंक्तियां, मुदित मन नर-नारी, गृहों से प्रातः सायं वेद ध्वनि के साथ आकाश में उठते यज्ञ-धूम की लहरें—इस प्रकार की अयोध्या नगरी थी। इस नगरी में कोई अभावग्रस्त अल्पायु में कृपण, निर्दयी, मूर्ख, नास्तिक और बेरोजगार नहीं था। वेदार्थ जानने वाले महा तेजस्वी प्रजापालक सूर्यवंशी राजा दशरथ इस घनी आबादी वाले राज्य के स्वामी थे।

दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ

धन-ऐश्वर्य विशाल राज्य इत्यादि सब सुख-सामग्रियों से सम्पन्न होने पर भी राजा दशरथ का जीवन फीका था। एक बड़ा अभाव था जिससे वे सदा चिन्तित रहते थे। वह था सन्तान का अभाव। दशरथ के तीन रानियां थीं कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी। मन्त्री सुमन्त्र ने राजा से निवेदन किया कि शृंग ऋषि द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ कराइए, अवश्य सफलता होगी। दशरथ स्वयं अपने मन्त्रि-मण्डल और तीनों रनियों सहित ऋषि के आश्रम में गये और सात-आठ दिन तक आश्रम में ही रहे। राजा ने अपनी इच्छा ऋषि की सेवामें निवेदन की। शृंग ऋषि ने कहा—"अथर्ववेद द्वारा विधिवत् पुत्रेष्टि यज्ञ कराऊंगा और इससे आपका मनोरथ अवश्य पूरा होगा।" यज्ञ समाप्ति के पश्चात् ऋषि ने राजा को यज्ञ का अवशेष समर्पित करते हुए कहा कि "इसे आप अपनी तीनों पत्नियों को खाने के लिए दें। अवश्य ही आपकी इष्ट सिद्धि होगी।"

तीनों रानियों ने इस दैवीय प्रसाद को नतमस्तक हो ग्रहण किया। तीनों रानियां गर्भवती हुईं। चैत्रमास के शुक्ल पक्ष की नवमी को बड़ी रानी कौशल्या के गर्भ से प्रभूत गुण सम्पन्न नयनाभिराम राम का जन्म हुआ, कुछ समय बाद कैकेयी के गर्भ से भरत और सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न का जन्म हुआ। इन चारों पुत्रों के जन्म से समस्त अयोध्यावासी हर्ष और आमोद से फूल उठे। स्थान-स्थान पर नाच, गान, नगाड़ों इत्यादि द्वारा प्रजा ने अपनी प्रसन्नता प्रकट की। राजा दशरथ ने उन्मुक्त हाथों बन्दीगणों को पारितोषिक, और विद्वान् ब्राह्मणों को पुष्कल धन और गौओं के दान से आह्लादित किया।

ज्येष्ठ पुत्र राम

११ दिन के बाद महर्षि वशिष्ठ ने इन चारों बालकों का नामकरण, तत्पश्चात् निष्क्रमण, अन्नप्राशन आदि संस्कार शास्त्रोक्त विधि से सम्पन्न कराये। उपनयन के पश्चात् चारों बालक महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में सुयोग्य शिक्षकों से वेद शास्त्र, अंग-उपांग इतिहास , राजनीति, शस्त्र-अस्त्र विद्या इत्यादि में पारंगत हुए। कुछ ही वर्षों में चारों राजकुमार विविध विद्याओं और कलाओं में पूर्ण योग्य होने के साथ तेजस्वी, शूरवीर, युद्ध विद्या में भी सिद्धहस्त हो गये। इन चारों में सर्वाधिक मेधावी, तेजस्वी और शूरवीर राम थे। सबसे ज्येष्ठ होने के अतिरिक्त गुणगारिमा में भी राम सर्वश्रेष्ठ थे। लक्ष्मण श्री राम की सेवा में सदा संलग्न रहते थे। राम भी लक्ष्मण के प्रति विशेष प्रीतिशील थे, राम जहां कहीं बाहर जाते तो लक्ष्मण धनुष हाथ में ले उनका ही अनुगमन करते थे। भरत मिष्ट और सौम्य स्वभाव के थे। शत्रुघ्न में सेवा और विनम्रता विशेष रूप से निखरी हुई थी। इस प्रकार चारों भाई एक दूसरे के प्रति प्राण प्रिय और एकता तथा समता के सूत्र में आबद्ध थे।

विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के लिए राम-लक्ष्मण

राम का यश सौरभ चतुर्दिक् व्याप्त हो रहा था। अयोध्या की प्रजा के लिए राम पूर्णिमा के चन्द्र की तरह आह्लाद जनक थे। राजा दशरथ राम के और तीनों पुत्रों के विवाह के सम्बन्ध में एक दिन अपने मंत्रियों और धर्माचार्यों से चर्चा कर रहे थे। इसी समय गाधिपुत्र विश्वामित्र ऋषि राजा दशरथ से मिलने आये। द्वारपाल द्वारा ऋषि आगमन का समाचार सुनते ही दशरथ वशिष्ठ मुनि सहित उनका स्वागत करने के लिए द्वार पर आ गये। यथोचित सेवा-सत्कार और कुशल मंगल समाचार पूछने के वाद राजा नम्रता से बोले—ऋषिवर! आज आप स्वयं अनुग्रह करके पधारे इससे हम अपने को धन्य मानते हैं। भगवन्! मेरे लिए क्या आज्ञा है? हम सब आपकी सेवा के लिए उद्यत हैं।

विश्वामित्र—आपने स्वयं ही अपने योग्य सेवा पूछी है। इस लिए मेरा विश्वास है कि आप अपने इस वचन का पालन करेंगे।

दशरथ—भगवन्! अवश्य पालन करूंगा।

मुनि विश्वामित्र बोले:—

राजन्! आजकल मैं एक विशेष महायज्ञ कर रहा हूं। इस यज्ञ का उद्देश्य प्राणि मात्र का कल्याण है। विश्व शान्ति की एक मात्र कामना से यह शुभ आयोजन किया गया है। पर इस यज्ञ में दो राक्षस मारीच और सुबाहु भारी विघ्न डाल रहे हैं। यद्यपि मुझमें इतनी शक्ति है कि मैं श्राप देकर इन राक्षसों का अन्त कर दूं पर मैं इस मांगलिक अवसर पर क्रोध की भावना उद्दीप्त नहीं करना चाहता। इससे यज्ञ का सर्वहित का उद्देश्य विकृत हो जाएगा। पर राक्षसों के इन उपद्रवों का दमन भी आवश्यक है। अन्यथा यह यज्ञ निर्विघ्न पूर्ण नहीं होगा। राजा होने से आपका भी कर्त्तव्य है कि इसमें मेरा पूरा सहयोग दें।

दशरथ—तब इस महायज्ञ की निर्विघ्न पूर्ति के लिए मै आपसे भिक्षा मांगने आया हूं।

दशरथ—भिक्षा !! ऐसा कहकर मेरा अपमान न करिये। मैं तो आपका सेवक हूं। आपकी आज्ञा का ही पात्र हूं।

विश्वामित्र—राजन् ! अब ध्यान से मेरी कामना सुनिए और उसे अविलम्ब पूरा कीजिए। इस यज्ञ की रक्षा के लिए आप अपने ज्येष्ठ, वीर, पराक्रमी और गुणों के भण्डार पुत्र राम को मेरी सहायता के लिए अभी भेज दीजिए। उसी में वह शक्ति है जिससे दोनों राक्षसों का संहार हो सकेगा। जब मेरे पास रहेगा, तब मैं उसे ऐसी गुप्त विद्याएं सिखा दूंगा जिससे वह अलौकिक शूरवीर और किसी भी प्रकार के शत्रु का नाशक हो जाएगा। मैं आपको यह भी बता दूं कि यज्ञ की पूर्णाहुति का समय अत्यन्त निकट आ गया है। इसलिए राम को मेरे साथ भेजने में अब तनिक भी बिलम्ब नहीं होना चाहिए।

दशरथ राजा ऋषि के वचनों को सुनते ही भौचक्के हो गये। उनका सिर चकराने लगा। पुत्र स्नेह से विह्वल हो बोलेः—

ऋषिवर ! अगर यज्ञकी ही रक्षा करनी है तो मैं अपनी चतुरंगिणी सेना को ले आपके साथ चलने को अभी उद्यत हूं। मेरा राम अभी केवल १५ वर्ष का बालक है। वह भला इन कराल-विकराल राक्षसों से लड़ने की क्षमता कहां रखता है ? राम मुझे पुत्रों में सर्वाधिक प्रिय है।

विश्वामित्र—राजन् ! मुझे तो राम को ही ले जाना है। आपकेजाने से फल सिद्धि नहीं होगी। राम की वीरता अद्वितीय है।

दशरथ—अगर आप राम को ही ले जाने का हठ कर रहे हैं तो मेरी चतुरंगिणी सेना भी साथ जाएगी। मैं अपने नन्हे बालक को इस युद्ध-अग्नि में कैसे झोंक सकता हूं ?

विश्वामित्र राजा के वचनों से कुछ रुष्ट होकर बोले--राजन् ! आपका यह व्यवहार रघुवंशियों की कुल परम्पराओं के विरुद्ध

है। आप अपने प्रारम्भ में दिये गये वचन का पालन नहीं कर रहे। अच्छा अब मैं यहां से जाता हूं।

अब दशरथ बड़ी उलझन में फंस गये। राजगुरु वशिष्ठ ने इस मामले में हस्तक्षेप कर स्थिति को संभाला। वे बोले—ऋषि विश्वामित्र को तो आप पहले ही वचन दे चुके हैं। इस लिए अब वचन भंग का श्राप अपने सिर पर मत लें। इक्ष्वाकु कुल की परम्पराओं का पालन कीजिए। विश्वामित्र जी भी सिद्ध, तपस्वी ऋषि हैं और कई गुप्त विद्याओं में पारंगत हैं। उनके हाथों राम का कोई अहित होने की आप को कल्पना भी नहीं करनी चाहिए।

अब दशरथ के लिए कोई माग न रहा। वह राम को विश्वामित्र के साथ भेजने को तैयार हो गये, इस शर्त्त के साथ कि लक्ष्मण को भी आपको ले जाना होगा। दोनों अभिन्न हृदय हैं। लक्ष्मण तो पहले ही स्वेच्छा से राम के साथ जाने को उतावले हो रहे थे। मुनि यह सुन अत्यन्त प्रसन्न हुए। दशरथ ने दोनों राज पुत्रों को बुलाया। राज पुरोहितों ने मंगलाचरण किया। माता-पिता और गुरु के चरणों को स्पर्श कर दोनों ने विदा ली। विश्वामित्र अब प्रसन्न मुद्रा में दोनों राज पुत्रों के साथ अपने आश्रम के लिए प्रस्थान कर गये।

ऋषि द्वारा राजकुमारों को दो गुप्त विद्याओं की शिक्षा

अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित राम-लक्ष्मण विश्वामित्र मुनि के साथ यज्ञ-स्थल की ओर चल पड़े। मार्ग में जब सायंकाल हो गया तब विश्वामित्र ने दोनों राजकुमारों को सरयू नदी के तट पर सन्ध्या के लिए अपने साथ बैठाया। इस के बाद ऋषि ने दोनों को "बला" और "अतिबला"—योग की इन दो गुप्त विद्याओं का उपदेश दिया। ऋषि ने दोनों राजकुमारों को इन विद्याओं के सम्बन्ध में बताया कि इनके प्रभाव से तुम्हारा आत्म बल बढ़ जाएगा, कठिन से कठिन कार्य में भी तुम्हें किसी प्रकार की विकलता का अनुभव न होगा।

ग्रौर तुम दोनों ग्रासुरी शक्तियों के आक्रमण से सुरक्षित रहोगे। विधिवत् आचमन कराने के पश्चात् ऋषि ने दोनों राजकुमारों को इन दोनों विद्याग्रों में दीक्षित किया। फलतः राजकुमारों का ग्रात्म-गौरव उद्दीप्त हो गया। इन विद्याओं ने उनके भीतर संजीवनी बूटी के सदृश नूतन शक्ति ग्रौर स्फूर्ति का समावेश कर दिया। उस दिन तीनों ने सरयू के तट पर रात्रि बितायी। प्रातः दोनों राज-कुमारों ने नित्य कर्म से निवृत्त हो, ऋषि के तत्त्वावधान में "ग्रो३म्" के जाप के साथ सन्ध्या वन्दन किया।

मार्ग में ऋषि ग्राश्रमों की यात्रा करते हुए नदी को पार कर विश्वामित्र ऋषि सहित दोनों राजकुमार एक घने जंगल में प्रविष्ट हुए। ऋषि ने बताया कि सुन्द राक्षस की स्त्री ताड़का ग्रौर उसके पुत्र मारीच का यह वन है। तुम मेरे आदेश से इस ताड़का का वध करो ताकि यह वन निष्कण्टक हो जाय। राम के धनुष की प्रबल टंकार सुन ताड़का अपनी गुफा में से बाहर निकल आयी ग्रौर दोनों भुजाएं उठा राम-लक्ष्मण को मारने के लिए सामने तेजी से दौड़ी ग्रायी। राम ने उसी समय उसकी छाती में वाण मारा, जिससे तत्क्षण ही भूमि पर गिर गयी और मृत्यु को प्राप्त हो गयी। विश्वा-मित्र ऋषि इससे बड़े प्रसन्न हुए। तीनों ने वह रात वहीं बिताई। दूसरे दिन प्रातः विश्वामित्र ने राम को दण्ड चक्र, काल चक्र, ब्रह्मास्त्र, आग्नेयास्त्र ग्रादि अनेक दिव्य ग्रस्त्र-शस्त्र प्रदान किये ग्रौर उनके प्रयोग की विधि भी बताई। दोनों भाइयों सहित विश्वामित्र ने यात्रा जारी रखी। चलते-चलते वे एक सुरम्य और मन मोहक आश्रम में पहुंचे। राम के पूछने पर विश्वामित्रने कहा कि यह सिद्ध आश्रम है और मैं यहीं रहता हूं।

इसी आश्रम में मैं यज्ञ कर रहा हूं जिसकी रक्षा के लिए मैं तुम दोनों राजकुमारों को लाया हूं। आश्रमवासियों ने दोनों राजकुमारों का यथोचित सत्कार किया। इसके बाद राम ने मुनि से निवेदन

किया "भगवन् ! हम दोनों भाई अब आश्रम की रक्षा के लिए तैयार हैं। आप निश्चिन्त हो यज्ञ प्रारम्भ करें।"

यज्ञ विध्वंसक राक्षसों का वध

विश्वामित्र ने विधिवत् यज्ञ प्रारम्भ किया जो छः दिन तक लगातार चलता रहा। दोनों भाई, बिना एक क्षण भी विश्राम किये, यज्ञ की रक्षा करते रहे। अन्तिम दिन ताड़का का पुत्र मारीच अपने साथी सुबाहु व अन्य राक्षसों के साथ यज्ञ में विघ्न डालने के लिए आक्रमण करने लगे।

तत्काल राम ने धनुष पर वाण चढ़ा लक्ष्मण से कहा "इन अत्या चारी राक्षसों का मैं अभी नाश करता हूं। तुम भी सावधान रहो। राम ने मारीच की छाती पर एक प्रबल अस्त्र मारा जिससे वह उसी क्षण मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़ा। कुछ देर वाद, होश पाते ही दक्षिण की ओर भाग गया। सुबाहु को राम ने आग्ने-यास्त्र से मार दिया और अन्य राक्षसों को भी नष्ट कर दिया। ऋषि का यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो गया। अब बड़ी प्रसन्नता से बोले—हे महावीर ! अब मैं कृतार्थ हो गया। तुमने, सचमुच, इस आश्रम को सिद्ध पुरुषों के रहने योग्य बना दिया और तुम्हारे ही वल से यहां का ऋषि समाज अब संकट-मुक्त हो गया। तुम्हारा जितना धन्यवाद करूं उतना ही थोड़ा है।"

विश्वामित्र के साथ मिथिला नगरी की ओर

ऋषि की आज्ञा पालन करने के पश्चात् दोनों राजकुमार विश्वा मित्र की सेवामें उपस्थित हो बोले:—"भगवन् ! अब हमारे लिए क्या आज्ञा है ?" ऋषि ने कहा राजा जनक की मिथिला पुरी में एक महायज्ञ हो रहा है। वहां एक अद्भुत धनुष है। इस पर आज तक कोई प्रत्यंचा नहीं चढ़ा सका है। इस पर प्रत्यंघा चढ़ाने के लिए अनेक देशों से पराक्रमी राजा और राजकुमार इकट्ठे हो

रहे हैं। तुम भी वहां चलो। दोनों राजकुमार मुनि की आज्ञा अनुसार मिथिला की ओर चले। रास्ते में शोण (सोन) नदी पार कर सायंकाल वहीं सन्ध्या-उपासना और अग्नि होत्र के बाद रात्रि विश्राम कर प्रातः पुनः सन्ध्या उपासना आदि कृत्यों से निवृत्त हो यात्रा करते हुए गङ्गा पार कर विशाला नगरी में पहुंचे। रात इस नगरी में ठहरने के बाद अगले दिन यात्रा कर मिथिला पहुंच गये। नगर के बाहर एक सूना सा आश्रम देख राम ने विश्वामित्र से उसका इतिहास पूछा। ऋषि ने बताया यह आश्रम महर्षि गौतम का है जहां वे अपनी पत्नी अहिल्या के साथ रहते थे। गौतम की अनुपस्थिति में एक दिन इन्द्र गौतम का छद्म वेश बना कर अहिल्या का शील भंग कर जिस समय कुटिया से बाहर निकला, उसी समय गौतम वहां पहुंच गये। इन्द्र के इस दुराचार को देख उन्होंने उसे नपुंसक होने का श्राप दिया और अपनी पत्नी अहल्या को १० वर्ष तक घोर तपस्या द्वारा प्रायश्चित्त करने का आदेश दिया। गौतम ऋषि आश्रम छोड़कर चले गये। उनकी पत्नी अहल्या अब अकेली यहां रहती हुई तपश्चर्या में अपना जीवन व्यतीत करती है। राम-लक्ष्मण दोनों ने श्रद्धा पूर्वक अहल्या के दर्शन किये और उस तप से देदीप्यमान् देवी के चरण स्पर्श किये। अहल्या ने हर्ष विह्वल हो विश्वामित्र सहित दोनों राजकुमारों का आतिथ्य किया।

सीता स्वयंवर—राम का शौर्य

अब मिथिला नगरी में सबने प्रवेश किया। राजा जनक ने स्वागत करने के पश्चात् दोनों राजकुमारों का परिचय पूछा। ऐसे शूरवीर और गुणशाली दोनों युवकों को देख जनक बड़े प्रसन्न हुए। अगले दिन प्रातः यज्ञ मंडप में पधारे, देश-देशान्तर के विद्वानों और महर्षियों की उपस्थिति में यज्ञ सम्पन्न हुआ। अब सीता स्वयंवर का समय हो गया। अनेक देशों से वीर पुरुष वहां एकत्र

हुए थे। जनक की प्रतिज्ञा थी कि जो इस भारी धनुष पर प्रत्यंचा (डोरी या चाप) चढ़ा देगा उसे ही मेरी पुत्री सीता पति रूप में वरेगी। उस सभा में उपस्थित कोई व्यक्ति जनक की इस शर्त्त को पूरा न कर सका। तब जनक निराश-से हुए राम की ओर देखने लगे। विश्वामित्र ने भी राम की ओर प्रशंसा सूचक दृष्टि से देखा। तब राम उठे और उन्होंने सहज ही धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा दी। जब राम ने इस प्रत्यंचा को खींचा तब वह पुराना धनुष तत्काल टूटकर दो टुकड़े हो गया। राम के इस अद्‌भुत शौर्य को देख राजा जनक का हृदय उछल पड़ा। वे अनायास होके विश्वामित्र से बोल उठे—मुनिवर! सीता के लिए मुझे मन चाहा वर मिल गया। सीता ने राम के गले में जयमाला डाल दी। ऋषि की स्वीकृति से राजा जनक ने दशरथ के पास राम-सीता के विवाह का प्रस्ताव विश्वस्त मंत्रियों के हाथ अयोध्या भेज दिया। मंत्रिगण तीन रात्रि की यात्रा के बाद अयोध्या पहुंचे। राजा दशरथ सब समाचार सुन बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने मंत्रियों, पुरोहितों और प्रमुख नागरिकों के साथ परामर्श कर राजा जनक के प्रस्ताव को मान लिया। मिथिला यात्रा की तैयारी प्रारम्भ हो गयी। राज मण्डली और चतुरंगिणी सेना के साथ चार दिन की यात्रा के बाद पांचवे दिन राजा दशरथ दल वल सहित मिथिला जा पहुंचे। राजा जनक की ओर से राजा दशरथ और ऋषियों सहित समस्त अतिथियों का धूम-धाम से स्वागत किया गया।

जनक परिवार में चारों भाइयों के विवाह

अगले दिन से विवाह सम्बन्धी अनुष्ठान प्रारम्भ हो गये। राम-सीता का तो स्वयंवर से विवाह निश्चित हो चुका था। विश्वामित्र की प्रेरणा से जनक ने अपनी दूसरी कन्या उर्मिला के लक्ष्मण के साथ विवाह की चर्चा चलाई। दशरथ ने इसे सहर्ष स्वीकार किया। इस शुभ अवसर पर राजा जनक ने अपने छोटे भाई सांकाश्य पुरी

के राजा कुशध्वज को भी बुला भेजा। विश्वामित्र मुनि ने भरत-शत्रुघ्न के साथ कुशध्वज की दोनों कन्याओं के विवाह का प्रस्ताव किया। दोनों पक्षों ने इसे सहर्ष स्वीकार किया। तीसरे दिन प्रभात वेला में एक वेदी पर ही दशरथ राजा के चारों पुत्रों का विवाह राजा जनक की दोनों कन्याओं का और सीता के साथ राम का उर्मिला के साथ लक्ष्मण जनक के छोटे भाई कुशध्वज की दोनों कन्याओं मांडवी के साथ भरत का और श्रुतकीर्ति के साथ शत्रुघ्न का विवाह गोदान के बाद वैदिक रीति से सम्पन्न हुआ। पौरोहित्य का कार्य राजा दशरथ की ओर से वसिष्ठ ऋषि सहित विश्वामित्र ने और राजा जनक की ओर से शतानन्द ने किया। दोनों भाइयों ने अपने समधि राजा दशरथ और अपनी पुत्रियों सहित चारों दामादों तथा वर पक्ष वालों को प्रचुर भेंट उपहार के सन्तुष्ट कर विदा किया।

चारों कुल लक्ष्मियों और ऋषि मुनियों तथा बरातियों के साथ जब दशरथ अयोध्या वापस आये तब अयोध्या और समूचे देश में हर्ष और आनन्द का समुद्र उमड़ पड़ा। तीनों महारानियां ऐसी गुण सम्पन्न और कुलीन वधुओं को प्राप्त कर अपने को सौभाग्यशाली समझने लगीं। चारों राजकुमार अपने राजकीय कर्त्तव्यों का पालन करते हुए दाम्पत्य सुख भोगने लगे। राम और सीता की जोड़ी तो समस्त प्रजाजनों के लिए आदर्श रूप थी। दोनों में एक से बढ़कर गुण थे अयोध्या की गृहपत्नियां तो इस जोड़ी पर मुग्ध थीं। रघुकुल में अजस्र सुख-सौभाग्य-ऐश्वर्य और यश की चतुर्दिक् श्री वृद्धि होने लगी।

अपने मामा युधाजित् के अत्यन्त आग्रह पर राजा दशरथ और माता कैकयी की आज्ञा अनुसार भरत, कुछ दिनों के लिये, ननिहाल चले गए, साथ में शत्रुघ्न भी गये।

युवराज पद के लिये राम का नाम—दशरथ की घोषणा

दशरथ अब वृद्ध हो चले थे। उन्होंने अपने जीवन काल में ही उत्तराधिकारी नियुक्त करने के विचार से लोक प्रतिनिधि सभा में

अपना संकल्प प्रकट किया। सब सदस्यों ने एक स्वर से तुमुल हर्ष-ध्वनि के मध्य इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया। वस्तुत: राम सब प्रकार से परम गुणशाली था। शरीर से अतिशय बलवान् और मानसिक दृष्टि से अति उदार, पवित्र, क्षमा, दया, प्रेम, सहानुभूति आदि सात्त्विक गुणों से ओतप्रोत था। बौद्धिक दृष्टि से राम उत्कृष्ट मेधावी और प्रतिभा युक्त था। राम ने आचार्य वशिष्ठ के चरणों में उपस्थित हो वेद-वेदांग तथा अन्य विद्याओं का विधिवत् अध्ययन किया था। युद्ध विद्या और शौर्य में राम अद्वितीय था। इस प्रकार राम लौकिक और आध्यात्मिक—दोनों दृष्टियों से आदर्श व्यक्ति थे। राम की पत्नी सीता भी, जहाँ बाह्य रूप में, अनुपम सुन्दरी कोमलांगी और कान्ति युक्त थी, वहाँ विदुषी, तपस्विनी, पूर्ण रूप से पतिपरायण और आत्मिक सम्पत्ति युक्त थी। इस प्रकार राम और सीता आदर्श पति-पत्नी होने के साथ-साथ अत्यन्त प्रजाप्रिय थे। जनता बड़ी उत्सुकता से उस दिन की प्रतीक्षा कर रही थी जब राम और सीता युवराज और युवराज्ञी के रूप में राज गद्दी के लिए अभिषिक्त होंगे। अन्तत: वह शुभ दिन भी आ गया। दशरथ ने लोक प्रतिनिधि सभा के निश्चय के राम को सूचित करने के लिए अपने विश्वासपात्र मंत्री सुमंत्र द्वारा उसे बुला भेजा। अपने पास बैठाकर राजा बोले—राम ! तुम मेरे ज्येष्ठ पुत्र हो। तुमने अपने लोकोत्तर गुणों से मुझे तथा सारी प्रजा को प्रभावित कर लिया है। तुम इस राज्य के सम्राट् होने के सर्वथा योग्य है। जनता ने स्वेच्छा से तुम्हें अपना राजा निर्वाचित किया है। अतएव मैं कल ही तुम्हें और सौभाग्यवती वधू सीता को युवराज्ञी और युवज्ञराज पर प्रतिष्ठित करना चाहता हूं। तुम दोनों पूर्ण तत्परता के साथ राजधर्म का पालन करना और इक्ष्वाकु वंश की परम्पराओं, प्रजा-पालन में सदा सचेष्ट रहना। राम ने पितृ चरणों में और प्रतिनिधि सभा के समक्ष सभासदों के सम्मुख नत मस्तक हो नमस्कार करते हुए

ग्रौर इस महान् दायित्व के लिए ग्राशीर्वाद की कामना करते हुए वहां से विदा ली।

अभिषेक की तैयारी

राम का युवराज बनने का समाचार बिजली की तरह अयोध्या और समस्त देश में फैल गया। ग्राबालवृद्ध नर नारी हर्ष विभोर हो इस शुभ घड़ी की प्रतीक्षा करने लगे। जनता चारों ओर से अयोध्या नगरी में हजारों की संख्या में एकत्र होने लगी। राजधानी में बड़ी सरगर्मी के साथ तैयारियां होने लगीं। राजा दशरथ ने राज्याभिषेक के लिए साम्राज्य के सब नरेशों ग्रौर राज प्रमुखों को द्रुतगामी राजकर्मचारियों द्वारा निमंत्रण पत्र भेज दिये। शीघ्रता के के कारण महाराज ने कैकेयराज ग्रौर मिथिला के राजा जनक को निमंत्रण नहीं भेजा। यह सोचकर कि इन दोनों को यह शुभ समाचार पीछे मिल ही जाएगा। दशरथ ग्रब राज मंत्रियों के साथ अभिषेक सम्बन्धी व्यवस्था पर विचार करने लगे। राम जब मातृचरणों में नमस्कार करने गये तब स्नेह मयी कौशल्या का हृदय तो गद्गद् हो गया। उसने राम के माथे का बार-ब्रार चुम्बन कर कई प्रकार के शगुन मनाये। तत्क्षण महलों में मंगल गान ग्रौर दान पुण्य होने लगे।

जब राम सीता के पास पहुंचे और प्रणय पूर्ण चितवन से उसे निहारते हुए बोले—प्रिय ! कलतुम साम्राज्ञी पद को प्राप्त करोगी। तब देवी स्मित हास्य मिश्रित लज्जा से नीचे मुंह किए और एक स्नेह पूर्ण दृष्टि से राम की ओर देखते हुए इतना ही मधुर स्वर से बोली कि तुम्हारे सम्राट् पद पर सुशोभित होने से ही मैं साम्राज्ञी पद के योग्य बन सकी हूं। वस्तुतः इस बधाई के तुम ही ग्रधिकारी हो।

दासी मन्थरा की सिखावट : कैकेयी के दो वर

कैकेयी की एक दासी मन्थरा थी वह उस के पितृ कुल से ही साथ आयी थी। ग्रयोध्या में इस अभूतपूर्व चहलपहल को देख

मन्थरा ने जब पूछताछ की, तब वह सब कुछ सुन घबरा गयी। तत्काल कैकेली के महल की ओर भागी गयी। रानी अपने भवन में सो रही थी एकदम उसे जा उठाया और बोली—रानी! तू तो बेहोश पड़ी है तुझे पता नहीं कितना बड़ा अनर्थ होने जा रहा है। कैकेयी ने जब चौंककर पूछा कि—क्या मामला है, कुछ बता तो सही"। तब मन्थरा ने ठंडा श्वास लेते हुए और आंखों में बनावटी आँसू लाते हुए कहा—राम को कल युवराज पद पर बैठाया जा रहा है। तू तो अब केवल दासी बन कर ही रहेगी। तब, कैकेयी ने बड़ी प्रसन्न मुद्रा से कहा—"दासी! तू तो बड़ा अच्छा समाचार लायी है।" इन शब्दों के साथ ही अपने गले का सोने का हार उसे देती हुई कैकेयी बोली—मुझे सारा वृत्तान्त सुना। मैं तो राम और भरत में कोई भेद नहीं देखती हूं। तू अब बोल, तुझे अब क्या अन्य पुरस्कार दूं? राम को गद्दी पर बैठे देख मैं तो अपना अहोभाग्य समझूंगी।

कुबड़ी मन्थरा तो बड़ी कुटिल और ईर्ष्यालु थी। अपनी चाल को व्यर्थ होते देख वह कैकेयी के प्रति अपनी प्रगाढ़ हित कामना प्रकट करती हुई बोली—रानी तू तो महामूर्ख और भोली भाली है। अपना हित-अहित कुछ भी नहीं समझती। देख तेरे पुत्र भरत को राजा ने पहले ही ननिहाल भेज दिया है। उसे इस अवसर पर बुलाया भी नहीं है। राम के युवराज बन जाने पर तू तो कौशल्या कीदासी ही बन जायगी। राम भरत को अपना प्रतिद्वन्द्वी समझ उसका हित सर्वनाश करने को सदा उद्यत रहेगा। मैं तो तेरे हित की बात ही कहती हूं। मैं तो दासी ही रहूंगी, कभी रानी नहीं बन सकती। पर, तुझे कौशल्या की दासी बनते मैं कैसे सहन कर सकती हूं? मैंने तेरा नमक खाया है। इसी लिए कहती हूं कि तेरा सर्वनाश हो जाएगा।

मन्थरा के इन छल कपट और प्रकट रूप में हितकारी पर,

वस्तुतः, विद्वेष पूर्ण वचनों से कैकेयी का मन कुछ प्रभावित हुआ। अपनी धूर्तता को सफल होते देख मन्थरा ने उसे राम, कौशल्या और दशरथ के प्रति और भी अधिक आतंकित कर दिया। अब कैकेयी दुविधा में पड़ गयी। बोली—मन्थरा, तू ठीक कहती है पर अब तो सब कुछ निर्णय हो चुका है। अभिषेक की तैयारियाँ धूम-धाम से हो रही हैं। अब मैं क्या कर सकती हूं ?

दुष्टा दासी ने अपनी कुटिल नीति को सफल होते देख कुछ देर सोचने के बाद कहा—रानी ! तू अब भी बहुत कुछ कर सकती है। तू तो सब कुछ भूल जाती है। क्या तुझे याद नहीं कि एक बार महाराज दशरथ शम्बर असुर के विरुद्ध इन्द्र की सहायता के लिए युद्ध करने गये थे। तुम राजा के साथ गयी थीं। उस समय राजा दानवों के भीषण प्रहार से अचेत हो गये थे। तुम उन्हें रणक्षेत्र से बाहर ले आयी थीं। बड़ी सेवा-शुश्रूषा की। राजा के प्राण बच गये और वे प्रसन्न हो गये। इसके बदले तुम्हें दो वर मांगने की स्वीकृति राजा ने दी थी। उस समय तुमने राजा को कहा था कि जब आवश्यकता होगी, मांग लूंगी। अब वह समय आ गया है। तुम दो वर मांगो। पहला यह कि राम को १४ वर्ष का वनवास और दूसरा यह कि भरत को राजगद्दी पर बैठाया जाए। तुम अभी अपने गहने-कपड़े उतार और सिर के बाल खोल कर कोप भवन में भूमि (धरती) पर लेट जाओ। अपनी बात पर अड़े रहना। फिर देखना तुम्हारा पुत्र भारत का सम्राट् बनेगा और मेरी मालकिन राजमाता के पद को सुशोभित करेगी। १४ वर्ष की लम्बी अवधि में प्रजा राम को भूल जाएगी और भरत अपनी आयु भर सम्राट् बन कर रहेगा।

कैकेयी कोपभवन में : दशरथ शोक-निमग्न

मन्थरा के इस षड्यन्त्र के वशीभूत हो कैकेयी तत्काल कोप-

भवन में पहुंच, अपने बहुमूल्य वस्त्र-आभूषण फेंक मलिन वेश में भूमि पर लेट गयी।

दशरथ दिन भर और रात को भी देर तक प्रातः होने वाले अभिषेक की तैयारी में व्यस्त रहे। थके मांदे जब आधी रात अन्तः-पुर में आये, तब सबसे पहले कैकेयी का ही महल था। द्वारपाल ने जब यह बताया कि रानी तो कोपभवन में हैं, तब बड़ी घबराहट के साथ उसके महल में गये। कैकेयी की हालत को देख राजा अवाक् रह गये। तीनों रानियों में सबसे छोटी और परम सुन्दरी होने के हेतु कैकेयी के प्रति राजा का अगाध प्रेम था। इस अप्रत्याशित स्थिति को देख किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। कैकेयी का शरीर सह-लाते हुए उसके इस प्रकार रूठ जाने का कारण पूछने लगे। पर कैकेयी एकदम चुप और ऐसा दिखा रही थी, जैसे, आंखों से अश्रु-धारा बह रही हो। राजा ज्यों-ज्यों उसकी मनौती और खुशामद करते जाते, रानी उतनी ही अधिक उनके प्रति उपेक्षा प्रकट करती जाती। राजा ने यहाँ तक कहा—

रानी ! तेरी प्रसन्नता के लिए मैं अपने प्राण तक देने को तैयार हूं। तेरे किसी भी विरोधी का पूर्ण उच्छेद कर दूंगा, तू जो कुछ मुंह से मांगना चाहती है, बेखटके माँग, मैं तत्काल तेरी कामना पूरी कर दूंगा।

राजा को इस प्रकार पूर्णरूप से अपने वश में देख कैकेयी ने कहा—अगर आप प्रतिज्ञा करें कि मेरी बात आप बिना शर्त तत्काल मान लेंगे, तब तो मैं अपनी इच्छा प्रकट कर सकती हूं, अन्यथा वृथा शब्द-जाल से क्या लाभ ?

कामान्ध दशरथ ने अविलम्ब शपथ खाकर कहा—"रानी ! तुम जो कहोगी, मैं उसे तत्काल पूरा कर दूंगा।"

कैकेयी ने दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए राजा को उन दो वरों की याद कराई जो उसने शम्बर असुर के युद्ध में सख्त घायल होने पर

कैकेयी द्वारा तन्मयता से की गयी सेवा-शुश्रूषा के बदले देने की प्रतिज्ञा की थी। राजा ने कहा—"हां, मुझे याद आ गया।" कैकेयी ने कहा—"उस समय तो मैंने वर नहीं मांगे थे, आज मैं दोनों वर माँगती हूँ।" दशरथ ने सहज भाव से कह दिया—हां, माँग लो। कैकेयी ने उसी क्षण कहा—मेरा पहला वर तो यह है कि राज्य अभिषेक की जितनी सामग्री तैयार की गयी है, उससे मेरे पुत्र भरत को अलंकृत कर राजगद्दी पर बैठाया जाए और दूसरा वर यह कि राम को तुरन्त ही तापस वेश के साथ १४ वर्ष का वनवास दिया जाए।

कैकेयी के मुख से इन दारुण वचनों को सुनते ही दशरथ एकदम हतप्रभ हो गये। फिर प्रवल शोक के फलस्वरूप मूर्च्छित हो गये। कुछ क्षण बाद तनिक होश आने के बाद कैकेयी को तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से देखते हुए बोले--पापिनी! कुलघातिनी!! जिस राम ने तेरी सेवा की है, जिसने तुझे अपनी जननी से भी अधिक माना, उसके लिए तेरे मन में ऐसा दुर्भाव क्यों उत्पन्न हुआ? तू तो अब तक नित्य उसकी प्रशंसा करती थी, उसी को अपना ज्येष्ठ पुत्र कहती थी, फिर तेरी बुद्धि आज इस तरह क्यों पलट गयी कि तू मुझे धोखे से प्रतिज्ञाबद्ध कर उसे घर से निकाल देने को तुली हुई है। कैकेयी! मैं अपना सर्वस्व त्याग सकता हूं, पर जीते जी अपने हृदय-धन राम को अपने से अलग नहीं होने दूंगा। मैं तेरे चरणों पर सिर रख विनति करता हूं कि इस हठ को छोड़ दे। इस बुढ़ापे में मेरे ऊपर रहम कर। मैं हाथ जोड़ता हूं, तेरे पैर पड़ता हूं, तू राम को वन भेजने के लिए मुझे वाध्य न कर।

राजा रोते हुए कैकेयी के पैरों पर गिर पड़े। कैकेयी उनकी प्रार्थना को ठुकराती हुई बोली—"महाराज! आप प्रसिद्ध सत्यव्रती होकर भी प्रतिज्ञा से विमुख होना चाहते हैं। आप के लिए यह घोर लज्जा और कलंक की बात है। आप अपने धर्म और यश की रक्षा

करें। यदि आप मेरी बात न मानेंगे तो मैं विष खाकर आत्महत्या कर लूंगी।" राजा उस कर्कशा और पत्थर दिल वाली नारी की ओर आँसू भरे नेत्रों से देखते हुए "हा राम ! हा राम !!" कहते भूमि पर अचेत गिर पड़े। उनकी हालत पागलों जैसी हो गयी। सम्हल कर बोले—"दुष्टे ! तू यह नहीं सोचती कि राम जैसा धर्मात्मा और सर्वगुणसम्पन्न पुत्र घर से चला जाएगा, तो संसार मुझे और तुझे क्या कहेगा ? मैं तो सदा के लिए कलंकित हो जाऊँगा।" दीर्घ, ठंडे श्वास छोड़ते हुए फिर दशरथ बोले—तू बड़ी कृतघ्न है। तूने छल-कपट से पहले मुझे अपने जाल में फँसा लिया और अब धोखे से मेरे गले में तूने फाँसी डाल ही है। मेरे जीते-जी राम-जैसा होनहार और धर्मात्मा पुत्र अनाथ की तरह जंगलों में भटकता फिरे, क्या यह मेरे लिए घोर दुःख और लज्जा की बात न होगी। हे कैकेयी ! मैं तेरे पैरों पड़ता हूं, मुझ पर दया कर, मेरे और इस इक्ष्वाकु वंश की मान-मर्यादा को मिट्टी में मत मिला .....

दशरथ के इस प्रकार रोते-पीटते सारी रात बीत गयी। राजा की मनोव्यथा लगातार बढ़ती जा रही थी। पर कैकेयी का दिल तनिक भी नहीं पसीजा। राजा का शरीर मुर्दे की तरह सुन्न हो गया। वह निर्दय रानी फिर भी विना किसी हिचक के बोली—"राजन् ! प्रातःकाल होने वाला है। जल्दी ही भरत को राजगद्दी पर बैठाने और राम को १४ वर्ष के वनवास की तैयारी कराएं, अन्यथा मैं अपने प्राण छोड़ दूंगी।"

इधर, भोर-वेला से ही समूचे नगर में जनता हर्ष-उल्लास में मग्न हो राज्याभिषेक देखने के लिए उतावली हो रही थी, झुंड के झुंड नर-नारी महलों की ओर उमड़ रहे थे। सारा नगर सुन्दर ढंग से तोरण-बन्दनवार इत्यादि द्वारा सजाया गया था। स्थान-स्थान पर मंगल-गान हो रहे थे। अभिषेक का शुभ मुहूर्त निकट आ गया। सभा भवन निमंत्रित गण्य-मान्य अतिथियों से भर गया। महर्षि

वसिष्ठ ने सुमंत्र को राजा दशरथ के पास अभिषेक मंडप में शीघ्र पधारने के लिए भेजा। सुमंत्र जब वहाँ पहुंचा तो राजा शय्या पर अचेत पड़े थे। वृद्ध मन्त्री ने अभिवादन आदि के बाद जब वसिष्ठ ऋषि की शीघ्र पधारने की प्रार्थना बताई, तब दशरथ बिना नेत्र झपकाये मन्त्री की ओर एकटक देखते रहे पर कुछ भी बोलने का साहस न कर सके। तब कैकेयी स्वतः बोली—अभिषेक की व्यवस्था के सम्बन्ध में महाराज सारी रात चिन्तामग्न रहे, इसलिए अत्यन्त थके हुए हैं। तुम राम को शीघ्र यहां भेज दो।

राम को १४ वर्ष का वनवास : भरत राजगद्दी पर

सुमंत्र तत्काल राम के निवास स्थान की ओर गये। राम अभिषेक के लिए तैयार बैठे थे। सुमंत्र द्वारा पिता का आदेश पाते ही राम उधर चल पड़े। पिता को अत्यन्त व्याकुल और विक्षिप्त अवस्था में देख राम बहुत चिन्तित हुए। राम ने जब कैकेयी माता और पितृचरण में प्रणाम किया, तब दशरथ केवल "राम" इतना कहकर ही मौन हो गये। इस सारी स्थिति को देख राम ने अत्यन्त उद्विग्नता से कैकेयी से राजा के इस दारुण क्लेश का रहस्य पूछा। कैकेयी ने कपटपूर्ण शब्दों में कहा—"राम ! तुम से भयभीत होने के कारण ही राजा कुछ बोल नहीं पा रहे हैं। यदि तुम वचन दो कि उनके आदेश का पालन करोगे, तो मैं तुम्हें स्पष्ट सब बात कह दूं।"

राम ने कहा—मुझ से भयभीत होना !! माता ! तुम यह क्या बात कहती हो ? रही पिता के आदेश का पालन—"मैं उनकी आज्ञा से समुद्र में कूदने, पहाड़ से छलाँग मारने और अग्नि में प्रवेश करने के लिए प्रतिक्षण तैयार हूं। आप विश्वास करें, राम की जिह्वा दो प्रकार से बोलने वाली नहीं है।"

तब कैकेयी ने शम्बर असुर से किये गये युद्ध की सारी घटना

सुनाते हुए, और उस समय महाराजा द्वारा दिये गये दो वरों की चर्चा करते हुए कहा—"तुम्हारे पिता की उस प्रतिज्ञा के अनुसार मैंने दो वर मांगे हैं, पहला यह कि तुम्हारे स्थान पर भरत को राजगद्दी पर अभिषिक्त किया जाए और दूसरा यह कि तुम अभी विना देरी के तापस वेश धारण कर १४ वर्ष के लिए वनवास में चले जाओ। अपने पिता की प्रतिज्ञा की रक्षा करना अब तुम्हारा कर्त्तव्य है। मोहवश राजा स्वयं तुम से कहने में अशक्त हैं।"

कैकेयी के मुख से ऐसे हृदयबेधक शब्द सुन कर भी राम लेश-मात्र भी विचलित नहीं हुए। कहां अभी कुछ क्षण पश्चात् ही युवराज पद पर आरूढ़ होनें की धूम-धाम से अयोध्या नगर और सारे साम्राज्य मेंअभूतपूर्व तैयारियां और कहां उसके एकदम सर्वथा विपरीत १४ वर्ष का वनवास ! ! ! पर राम तो धैर्य और अविचलचित्त के जीवन्त प्रतीक थे। राम राज्याभिषेक और वनवास—दोनों प्रकार की परिस्थितियों में हिमाचल की तरह एक समान थे। हर्ष और शोक—दोनों में एक सदृश थे। यही इस नरपुंगव की दैवीय विशेषता थी। कैकेयी ने फिर एक विषयुक्त बाण छोड़ा। वह कर्कश स्वर में बोली—"राम ! जब तक तुम अयोध्या त्याग कर वन की ओर प्रस्थान नहीं करोगे, तब तक महाराजा इसी प्रकार शोक सागर में डूबते रहेंगे। इसलिये तुम्हें शीघ्र ही वन-यात्रा करनी चाहिए।"

राम नें नम्रता से कहा—"मातः ! मुझे तुम्हारी आज्ञा शिरोधार्य है। मेरे लिए पिता की अपेक्षा माता की आज्ञा कम मान्य नहीं है। महाराज की प्रतिज्ञा की रक्षा के लिए मैं अभी वन की ओर प्रस्थान करता हूं।" पर दशरथ नें जब कैकेयी के उपर्युक्त कठोर वचन सुनें तो वे तत्काल ही बोल उठे "धिक्कार है।" "हाय राम ! हाय राम ! !" इतना कहते ही वह मूर्च्छित हो गये। कैकेयी की इस आज्ञा की पिता से किसी प्रकार की पुष्टि की

प्रतीक्षा किये विना राम कैकेयी की चरण-वन्दना कर तत्काल वहां से माता कौशल्या, सुमित्रा और भाई लक्ष्मण तथा अपनी जीवन संगिनी सीता—इन सबसे विदाई लेने चले गये।

कुछ क्षणों में ही यह समाचार सारे नगर में विद्युत्तरंग की तरह फैल गया। आबाल-वृद्ध नर-नारी शोक सागर में डूब गये। राम अभिषेक के वस्त्र और छत्र-चमर आदि त्याग कर प्रसन्नता के साथ जब अपनी माता कौशल्या के पास गये तब वह विलाप करती हुई बोली—मेरे भाग्य में तो सुख है ही नहीं। सोचा था, पुत्र होने पर दिन पलटेंगे, मेरे लिए वह भी नहीं हुआ। मैं निरन्तर कैकेयी की सेवा में लगी रहती थी, पर उसकी दासी जितना भी मेरा मन नहीं था। अब तो मुझे कोई पूछेगा भी नहीं।

लक्ष्मण का प्रबल क्रोध : पिता को मारने को उद्यत

तेजस्वी लक्ष्मण अभी तक चुप थे। कौशल्या के विलाप को सुनकर बोले—माता ! राजा कामी और अति वृद्ध हैं, उनकी मति भ्रष्ट हो गई है। ज्येष्ठ भ्राता राम ने ऐसा कोई अपराध नहीं किया है, जिसके लिए उन्हें राज्य से निर्वासित किया जाए। कौन पिता ऐसे श्रेष्ठ पुत्र का त्याग करेगा ?

लक्ष्मण और भी अधिक क्रोध में आ राम से बोले—भाई ! आप अभी अपना अभिषेक कराइए। मैं देखता हूं, मेरे रहते कौन आपको राजगद्दी पर बैठने से रोकता है ? पिता भी यदि कैकेयी के बहकावे में आकर इस में बाधक होंगे, तो मैं उस बूढ़े, कामी पिता का आज ही अन्त कर दूंगा। कौशल्या भी बोली—पुत्र ! तुम्हारे पिता को कैकेयी ने बहका दिया है। तुम उसकी अनुचित बात मत मानो। तुम्हारे ऊपर मेरा भी कुछ अधिकार है। मैं तुम्हें वन जाने से रोकती हूं। राम ने नम्रता से उत्तर दिया—माता ! पिता की आज्ञा उल्लंघन करने की शक्ति मुझ में नहीं है। उनकी आज्ञा मेरे लिए

ही नहीं तुम्हारे लिए भी मान्य है। वे मेरे पिता और तुम्हारे पति भी हैं। अब तुम मुझे वन जाने की अनुमति दो। लक्ष्मण से राम बोले--क्षणिक आवेश में आकर क्षत्रिय को अपने कर्त्तव्य मार्ग का त्याग नहीं करना चाहिए। इसमें महाराज और माता कैकेयी का कुछ भी दोष नहीं है। यह सब भाग्य का खेल है। जीवन में इस प्रकार के उतराव-चढ़ाव आते ही रहते हैं।

लक्ष्मण का क्रोध शान्त नहीं हुआ। आवेश में वे पुनः बोले--भाग्य की बात तो कायरपुरुष किया करते हैं। मैं अपने भुजा बल के सहारे आपको राजगद्दी पर बैठाऊंगा। देखता हूं, कौन विरोध करता है? मैं अपने बाहुबल से अयोध्या को मनुष्य-रहित कर दूंगा।

राम की शिक्षा से लक्ष्मण शान्त

अब राम गंभीर हो गये। लक्ष्मण को सावधान करते हुए बोले—"अपने बाहु-बल का इतना अभिमान मत करो। इस प्रकार का अधर्म और हिंसायुक्त राज्य मुझे नहीं चाहिए। मैं पिता के सत्य धर्म की रक्षा के लिए आज ही वन जाऊँगा। मेरे लिए राज्य का सिंहासन और वनवास—दोनों में कोई अन्तर नहीं है।" लक्ष्मण चुप हो गये

माता का आशीर्वाद

अब कौशल्या का प्रबल सन्ताप अश्रुधारा के रूप में बाहर बहने लगा। वह राम को लिपट गयी और साथ जाने का आग्रह करने लगी। राम ने उन्हें समझाया और शान्त किया। अब उनके चरणों का स्पर्श कर वन यात्रा की आज्ञा मांगी। कौशल्या के अश्रु रुकते नहीं थे। किसी प्रकार बोली—राम! अच्छा, अगर तुम जाना ही चाहते हो तो जाओ। होनहार को कौन टाल सकता है? मैं चौदह वर्ष तक एक-एक क्षण तुम्हारी प्रतीक्षा में बिताऊंगी। तुम सकुशल

लौटो। जिस धर्म का तुम पालन करते हो, वही तुम्हारी रक्षा करे। माता-पिता के पुण्य तुम्हारे सहायक हों, सभी दिशाएं तुम्हारे लिए मंगलमय हों, ऋषि-मुनि, मनुष्य, पशु-पक्षी, पृथ्वी-आकाश, जलवायु, सूर्य-चन्द्र सभी तुम्हारे प्रति कल्याणकारी हों। मेरी चिरकालीन तपस्या का फल तुम्हें मिले। तुम्हारा शास्त्र-अध्ययन सफल हो ! लोक की दैवी शक्तियां तुम्हारे अनुकूल हों ! पुत्र ! जाओ, मैं रोम-रोम से तुम्हें आशीर्वाद देती हूं।

सीता का साथ जाने का आग्रह

अब राम सीता के पास गये। सीता को तो अचानक हुए इस परिवर्तन का कुछ पता ही नहीं था। वह तो राम के साथ राजगद्दी पर बैठ साम्राज्ञी बनने के कल्पना-सागर में हर्ष विभोर हो रही थी। राम ने आते ही कहा—"देवी ! अब मैं तुम्हें १४ वर्ष के बाद मिलूंगा। तुम सास-ससुर का विशेष ध्यान रखना और भरत की इच्छा के अनुकूल हो चलना, अब वे तुम्हारे देवर ही नहीं, किन्तु देश के राजा भी हैं। हां, एक बात याद रखना। तुम उनके सामने भूलकर भी मेरी प्रशंसा न करना क्योंकि उच्च पदों पर आसीन व्यक्ति को दूसरे की प्रशंसा अच्छी नहीं लगती है।"

सीता यह सब सुन कर अवाक् हो गयी। उसे समझ में नहीं आया कि राम ऐसी उखड़ी-उखड़ी बातें क्यों कर रहे हैं ? उसने कहा—"आर्य पुत्र ! यह सब आप क्या कह रहे हैं ? अभी तो अभिषेक होने वाला है और आप १४ वर्ष के वनवास की बात कर रहे हैं। यह क्या पहेली है ?" राम ने सारी स्थिति बतलाई और कहा कि "मुझे अभी तापस वेष धारण कर वनवास जाना है। पिता की ऐसी ही आज्ञा है।" सीता ने गंभीर स्वर में कहा—पतिदेव ! यह कैसे हो सकता है कि आप तो वनों में रहें और मैं अयोध्या के महलों में अमन चैन से रहूं ? आपके बिना मेरे लिए स्वर्ग का

वैभव भी तुच्छ है। मैं छाया की भाँति आप के साथ ही रहूंगी। अर्द्धांगिनी होने से मेरा आपके साथ रहने का अधिकार है। वन में आपके साथ दुःख भोगने में भी मुझे अयोध्या के महलों से अधिक सुख प्राप्त होगा। आप मुझे भी साथ ले चलिए। अन्यथा आपके जाते ही मैं प्राण त्याग दूंगी।

राम बड़े असमंजस में पड़ गये। उन्होंने वन के कष्टों का विस्तार से वर्णन करके सीता को रोकना चाहा। सीता ने तत्काल उत्तर दिया—"मेरे पिता ने मेरा हाथ आपको यह समझते हुए सौंपा था कि आप बड़े वीर हैं। उन्हें यह नहीं पता था कि आप इतने कायर हैं कि अग्नि को साक्षी कर जिसका हाथ पकड़ा है॰ उसे पीछे अकेला छोड़ वनवास में जाना चाहते हैं। यदि वे पहले जानते, तो कभी मेरा हाथ आपके हाथों में न सौंपते। मेरे लिए तो सर्वस्व आप ही हैं। मैं आपका साथ कभी न छोड़ूंगी।"

लक्ष्मण का हठ

सीता रोती हुई राम के चरणों में गिर पड़ी। अब राम के लिए सीता को साथ ले जाने के सिवाय अन्य कोई विकल्प नहीं था। राम ने स्वीकृति दे दी। इसी समय लक्ष्मण भी वहां आ गये। उन्होंने साथ जाने को बड़ा आग्रह किया। वे बोले - "बड़े भाई और भाभी जब रात को विश्राम करेंगे तो वन में रात को पहरा देकर कौन उनकी रक्षा करेगा? कौन उनके लिए कुटिया बनाएगा और कौन उनके लिए वन में से कन्द-मूल और फल-फूल लाएगा?" इतना कह कर लक्ष्मण ने राम के पैर पकड़ लिए और रोने लगे। अन्त में राम ने कहा—अच्छा भाई लक्ष्मण! तुम माता कौशल्या, सुमित्रा और अपनी पत्नी उर्मिला से पूछ आओ। लक्ष्मण ने कहा— "अब इतना समय नहीं है। जब माता कौशल्या ने आपको वनगमन की स्वीकृति दे दी, तब मेरी माता सुमित्रा को आपत्ति हो सकती

है ?" राम ने कहा—"तुम गुरु वसिष्ठ के घर से मेरे सुरक्षित दिव्य अस्त्र-शस्त्र ले आओ और शीघ्र वनगमन की तैयारी करो।"

राम-सीता-लक्ष्मण वनगमन के लिए उद्यत

राम और सीता ने वनगमन से पूर्व विद्वान् ब्राह्मणों तथा सेवकों को भरपूर दान दिया। अब राम-सीता-लक्ष्मण—तीनों तापस वेश धारण कर अपने पिता दशरथ की सेवा में आशीर्वाद लेने पहुंचे। राजा उस समय घोर मानसिक व्यथा से तड़प रहे थे! तीनों रानियां तथा पुत्रवधुएं और अन्य आतमीयजन तथा मंत्रिगण वहां उपस्थित थे। राम को आते देख दशरथ उच्च स्वर से क्रन्दन करने लगे और राम का आलिंगन करने को खड़े हो, उसकी ओर तीव्रगति से बढ़े। उसी समय वे मूच्छित हो गिर पड़े। राम-लक्ष्मण ने उन्हें पलंग पर लिटा दिया। राम ने हाथ जोड़कर पितृचरण में निवेदन किया कि अब आप मुझे कृपा कर वनगमन की अनुमति दीजिए। सीता और लक्ष्मण भी मेरे साथ जाने का आग्रह कर रहे हैं। हम लोगों ने राज्यगृह के वस्त्र छोड़ तापस वेश धारण कर लिया है। अब आप आज्ञा दीजिए। हम लोगों के लिए किसी प्रकार का शोक न करें। राजा निर्निमेष राम की ओर देखते हुए बोले—"कैकेयी ने मेरी मति भ्रष्ट कर दी है। तुम मुझे पकड़ कर बन्दीगृह में डाल दो और अयोध्या का साम्राज्य संभाल लो।" राम ने नम्रता से कहा—"पिता जी ! मुझे राज्य का लोभ नहीं है। आपकी आज्ञा का पालन मेरा परम धर्म है। अब आप आज्ञा प्रदान करें।" राजा अत्यन्त विलाप करने लगे। पर, अब कोई दूसरा मार्ग न था। राम ने नम्रतापूर्वक पुनः कहा—"अब आप मुझे तत्काल वनगमन की आज्ञा दें। आपके धर्म और यश की रक्षा के लिए मैं बड़े हर्ष के साथ वन जा रहा हूं। १४ वर्ष बीतने पर पुनः आपके दर्शन करूंगा।"

दशरथ का विलाप

दशरथ अब बोलने में असमर्थ हो गये। राम, सीता, लक्ष्मण तीनों वहां से विदा हो चुके थे। होश आने पर राजा ने सुमंत्र को राम की वन-यात्रा का समुचित प्रबन्ध करने को कहा। जिस समय राम-सीता और लक्ष्मण वल्कल वस्त्र धारण करने लगे और सीता को ऐसे वस्त्र पहनने का ज्ञान न होने से उल्टे ढंग से जब वह पहनने लगी और राम ने उसे सीधा पहनने की विधि बताई, तब समुपस्थित समस्त मंत्रीगण और गुरु वशिष्ठ रुदन करने लगे। कैकेयी को सब ओर से धिक्कारा जा रहा था। सुमंत्र रथ ले आये। तीनों ने पिता-माता और गुरुजनों का पादस्पर्श किया और रथ पर बैठ गये। सबकी आंखों से अश्रु-धारा बह रही भी। अयोध्या की प्रजा हा-हाकार करती हुई रथ के साथ-साथ चलने को उद्यत हुई। राम ने सबको समझा-बुझाकर विदा किया।

सुमंत्र द्वारा लाये गये रथ पर पहले सीता को बैठाकर राम-लक्ष्मण अपने धनुष-वाण सहित बैठ गये और रथ तीव्र गति से चल पड़ा। सीता को रानियों ने कुछ आभूषणों से सुसज्जित कर दिया था। पर दशरथ और कौशल्या तथा सुमित्रा—दोनों रानियां तथा अन्य पुरवासी अभी तक रथ के पीछे पागल हुए पैदल ही "हा राम, हा राम" "हमें छोड़ कहां जा रहे हो"—चिल्लाते दौड़े चले आ रहे थे। राम पिता-माताओं के इस हृदय-वेधक दृश्य को देखना नहीं चाहते थे। दशरथ कह रहे थे "सुमंत्र, रथ खड़ा कर दो" और राम कह रहे थे "रथ तेजी से चलाओ।" मंत्री सुमंत्र इस समय बड़ी दुविधा में था। राम ने इस दुविधा को भांप लिया। वे बोले—"इस समय तुम मेरे आदेश का ही पालन करो। अगर राजा पूछे तो तुम कह देना कि अत्यन्त कोलाहल के कारण आपके वचन मैंने नहीं सुने। इस समय रथ के रुकने से राजा का क्लेश अधिक बढ़ जाएगा।" सुमंत्र ने राम की आज्ञानुसार रथ तेजी से हांका। रथ को ओझल

होते देख दशरथ मार्ग में ही हताश हो मूर्च्छित अवस्था में पृथ्वी पर गिर पड़े। रानियां और पुरवासी उन्हें उठाकर महल में ले गये। दशरथ अब भी "राम! कब मिलोगे" यही कहते रहे। रानी सुमित्रा ने अपने पुत्र लक्ष्मण से विदा होते हुए कहा, हे पुत्र! तुम वन में राम को पिता और सीता को माता तथा वन को ही अयोध्या समझना।

सन्ध्या को सुमंत्र का रथ तमसा नदी पर पहुंचा। रात्रि हो गयी थी। लक्ष्मण ने तृण शय्या तैयार की और राम सीता उसी पर लेट गये! वह रात तीनों ने जल पीकर ही बिता दी। धनुर्धारी लक्ष्मण ने सारी रात पहरा दिया। कई नागरिक यहां तक भी रथ के पीछे दौड़ते आये थे। राम को यह देख दुःख हुआ कि इन प्रतिष्ठित नागरिकों को भी भूमि पर रात बितानी पड़ी। राम ने उषाकाल में ही जागकर सीता-लक्ष्मण के साथ नदी तट पर सन्ध्या की और सुमंत्र को कहा कि पुरवासियों के सोते-सोते ही रथ को उत्तर दिशा की ओर ले जाकर हमें छोड़ आओ और फिर रथ वापस ले आना। इससे पुरवासियों को हमारे जाने की दिशा का ठीक-ठीक ज्ञान नहीं हो सकेगा। सुमंत्र ने ऐसा ही किया। वह तीनों को दूर तक छोड़ रथ वापस ले गया। पुरवासी राम के वियोग से दुःखी-हृदय सूर्य उदय होने पर वापस चले गये। राम-सीता-लक्ष्मण ने अब पैदल ही यात्रा प्रारम्भ कर दी। सायंकाल तक वे शृंगवेरपुर पहुंचे जो निषादराज गुह की राजधानी थी।

वन में प्रवेश

निषादराज गुह की दशरथ से पुरानी मित्रता थी। उसनें सूचना पाते ही अपने समस्त वन्धु-बान्धवों सहित राम का बड़े प्रेम से स्वागत किया। पर राम, सीता, लक्ष्मण को मुनिवेश में देख एकदम खिन्न हो गया। उसने राम को अपने राज्य में ही

१४ वर्ष का वनवास काटने का अनुरोध किया। इसी बीच निषादराज के सेवक नाना प्रकार के खाद्य-व्यंजन लेकर तीनों के सम्मुख उपस्थित हो गये। राम ने गुह का बड़े स्नेह से आलिंगन करते हुए कहा—राजन् ! मैं पिता की आज्ञा से राजपाट त्यागकर १४ वर्ष के वनवास के लिए अयोध्या से निकला हूं। हम तीनों को मुनिवत् तपस्वी जीवन व्यतीत करना है। इसलिए किसी महल व नगर में ठहरना और टाठ-बाठ की वस्तुओं का सेवन मेरे लिए अनुचित है। गुह के अत्यन्त आग्रह पर भी राम ने सीता और लक्ष्मण के साथ नगर से बाहर एक वृक्ष के नीचे तृण शय्या पर केवल जल पीकर रात्रिकाल व्यतीत किया। प्रातःकाल राम ने गंगा पार कर दंडकारण्य में प्रवेश करना था। सुमंत्र अभी तक साथ था। उससे विदा लेते हुए राम ने कहा, मंत्रिवर ! राजा के दुःख को दूर करने का प्रयत्न करें, हमारा प्रणाम पिता जी और माताओं के चरणों में कहें और उन्हें विश्वास दिला दें कि १४ वर्ष बाद उनके चरणों में अवश्य उपस्थित होंगे। भरत से मेरा सन्देश कहना कि सब माताओं के साथ एक-सदृश व्यवहार करें और महाराज को सब प्रकार से प्रसन्न रखें। राम जब सुमंत्र से विदा मांगने लगा तब वृद्ध मंत्री ने रोते हुए कहा—हे राम, मुझे भी आप साथ ले चलिए। लक्ष्मण की तरह मैं भी आपकी सेवा करता रहूंगा। राम ने कहा—मंत्रिवर ! आपसे बिछुड़ने में मुझे भी अफसोस हो रहा है पर राजा और राज्य के लिए आपका यहां से वापस जाना ही श्रेयस्कर है। आपके वापस जाने से कैकेयी को भी मेरी वनवास-यात्रा का पूरा विश्वास हो जाएगा और वह पिताजी को इस सम्बन्ध में अधिक तंग नहीं करेंगी। सुमंत्र यहां से खाली रथ के साथ वापस चले गये। नौका में बैठ तीनों ने गंगा को पार किया और अब विधिवत् दुर्गम पथ पर चलते हुए वन-यात्रा प्रारम्भ कर दी।

दिन भर जंगल में से चलते हुए शाम को तीनों एक पेड़ के नीचे टिक गये। सन्ध्या-प्रार्थना के बाद लक्ष्मण ने राम-सीता के लिए कोमल तृण शय्या तैयार कर दी। फल-मूल खा रात का विश्राम करने को जब तीनों समुद्यत हुए, तब राम ने लक्ष्मण से कहा—पिताजी निश्चय ही आज दुःख से सन्तप्त होंगे ग्रौर कैकेयी आग प्रसन्न होगी। मुझे भय है कि कहीं कैकेयी माता कौशल्या ग्रौर सुमित्रा को मेरे कारण सताती न हो, तुम आज ही ग्रयोध्या वापस चले जाओ। राम का वेग जब शान्त हुआ तो लक्ष्मण बोले हे राम ! आपको ऐसा नहीं कहना चाहिए। ग्रापके ऐसे वचनों से मैं और सीता एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकते। मैं आपके विना न पिता, न माता, न भाई, न पत्नी—किसी को देखना नहीं चाहता। इतना ही नहीं, ग्रापके विना मुझे तो स्वर्ग की भी इच्छा नहीं है। राम ने कहा—लक्ष्मण ! तुम ठीक कहते हो। पिता जी ने केवल एक स्त्री के कहने से कितना अनर्थ कर दिया है। मैं चाहूं तो अपने बाहुबल से ग्रयोध्या को अभी जीत सकता हूं किन्तु मैं ग्रधर्म के मार्ग का कभी ग्रवलम्बन नहीं करना चाहता। मुझे राज्यच्युत हो जाने का तनिक भी शोक नहीं है, मुझे तो केवल दोनों माताओं—कौशल्या और सुमित्रा की चिन्ता है।

भारद्वाज मुनि के आश्रम में

अगले दिन प्रातः दैनिक नित्य कर्मों ग्रौर सन्ध्या से निवृत्त हो यात्रा प्रारम्भ की ग्रौर भारद्वाज ऋषि के ग्राश्रम में पहुंचे। यह आश्रम गंगा-यमुना के संगम पर प्रयाग में था। भारद्वाज उस समय अग्निहोत्र करके उठे ही थे। राम सीता लक्ष्मण ने सादर नमस्कार किया। ऋषि ने तीनों का फल-मूल ग्रादि से सत्कार किया। ऋषि ने यह भी बताया कि वे राम के वनवास की सारी घटना सुन चुके हैं। राम ने निवेदन किया कि ग्रापका ग्राश्रम प्रयाग नगर के पास है। यहां लोग मुझे और सीता-लक्ष्मण को देखने आते

रहेंगे। इसलिए, ऐसा स्थान बतायें जहां सर्वथा एकान्त हो और सीता जी का भी मन लगा रहे। ऋषि ने कहा—यहां से १० कोस पर चित्रकूट पर्वत है, जो बड़ा सुरम्य और एकान्त है। वहां तुम सुखपूर्वक निवास कर सकोगे। आश्रम में एक रात्रि निवास कर अगले दिन प्रातः भारद्वाज ऋषि के साथ वेदपाठ में शामिल हो राम ने वहां से चित्रकूट के लिए प्रस्थान किया ऋषि कुछ दूर उनके साथ मार्ग दिखाने के लिए गये।

उधर, राम को वनवास के लिए गंगा तीर तक छोड़ देने के बाद जब सुमंत्र वापस अयोध्या आये, तब सर्वत्र शोक छा गया। राजा अत्यन्त व्याकुल हो हा राम, हा लक्ष्मण, हा सीता—तुम लोग कहां हो, यही शब्द बार-बार चिल्लाते रहे। दशरथ बार-बार यही कहते कि 'हे राम! तुम्हारा पिता अनाथ की तरह तड़प-तड़प कर मर रहा है। अब मरते समय मैं अपने प्यारे बच्चों का मुंह देखना चाहता हूं, पर मेरी यह इच्छा अब पूरी न हो सकेगी। मेरे पापों का ही फल है। कौशल्या का भी बहुत बुरा हाल था। वह छाती पीट-पीट कर रो रही थी। राजा उसकी दशा देख बड़े खिन्न हो गये और कौशल्या से अपने अपराधों के लिए बार-बार क्षमा मांगने लगे।

दशरथ की मृत्यु

दशरथ की हालत लगातार खराब हो रही थी। उग्र मानसिक व्यथा के कारण शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया था। दिन-रात राम-राम चिल्लाते रहते थे। यही कहते रहते—कौशल्या, सुमित्रा, अब मैं नहीं बचूंगा। मेरा अन्तकाल आ गया है!!

अयोध्या से राम के वनवास जाने के ६ दिन बाद दशरथ ने "राम राम" चिल्लाते आधी रात को प्राण त्याग दिये। अन्तःपुर में हाहाकार मच गया। सारी अयोध्या शोकसागर में डूब गयी।

दूसरे दिन मंत्रियों ने राजा के शव को तेल से भरे एक कड़ाहे में रख दिया क्योंकि अन्त्येष्टि के लिए कोई राजकुमार वहाँ नहीं था। मंत्रिमंडल ने राज्य की भावी व्यवस्था को दृष्टि में रखते हुए भरत को शीघ्र लाने के लिए तत्काल दूतों को कैकेय देश भेजा। सन्देश-वाहकों को कह दिया गया कि वे दशरथ की मृत्यु का समाचार न बताएं, केवल यही कहें कि राज्य में आवश्यक कार्य है, इसलिए उन्हें बुलाया गया है।

भरत की ननिहाल से वापसी : माता के प्रति प्रबल क्रोध

भरत जब आये, तब सारी स्थिति सुन अत्यन्त दुःखी हुए। अपनी माता कैकेयी से सब हाल सुन वे उसे धिक्कारते हुए बोले—"पापिनी ! तूने यह क्या किया ? तेरे कारण इक्ष्वाकु वंश कलंकित हो गया। पितृतुल्य राम का स्थान कौन ले सकता है ? तू ही मेरे पिता की हत्यारी है। यह राज्य राम का है और वही इस राज्य के स्वामी होंगे।" पिता की अन्तिम क्रिया भरत ने विधिपूर्वक की। इसके बाद मंत्रिमंडल ने भरत से राजसिंहासन पर बैठने की प्रार्थना की। भरत ने कहा—मैं कुलधर्म के विपरीत आचरण नहीं कर सकता। यह राज्य मेरे बड़े भाई राम का है। वे ही इसके उत्तराधिकारी हैं। मैं उन्हें वन से वापस लाकर राजगद्दी पर बैठाऊँगा।"

अपनी माता कैकेयी को मिलने के बाद जब भरत माता कौशल्या से मिलने गये तब उसने भरत को कहा—"तुम्हें राज्य की अभिलाषा थी। तुम्हें वह राज्य अब निष्कंटक प्राप्त हो गया; पर खेद है कि कैकेयी ने अत्यन्त क्रूर कर्म से यह राज्य तुम्हारे लिए प्राप्त किया है।"

माता कौशल्या के ये वचन सुन भरत अत्यन्त पीड़ित और दुःखी हुए और उसके चरणों में गिर देर तक विलाप करते हुए मूच्छित हो गये। होश आने पर भरत ने माता कौशल्या के सम्मुख लगभग

४० प्रकार के पाप और अनर्थ गिनाये और शपथ लेते हुए कहा है कि अगर राम मेरी अनुमति से अथवा किसी प्रकार की मेरी दुरभि-संधि से वन गये हों, तो इन सब पापों का जो भयंकर फल मिलता है, वह मुझे मिले।" कौशल्या ने कहा कि "मुझे अब पूर्णविश्वास हो गया है कि राम के वनगमन में तुम्हारा कोई हाथ नहीं है। यह प्रसन्नता की बात है कि तुम्हारा अन्तरात्मा धर्म से विचलित नहीं हुआ। तुम सत्यप्रतिज्ञ हो, तुम निश्चय ही सज्जनों के पद को प्राप्त करोगे।" यह कहकर कौशल्या माता ने भरत को अपनी गोदी में बैठा बड़ा प्यार किया। भरत तीनों माताओं, कुटुम्बियों, मंत्रिगण, पुरोहित और सेना के साथ राम को वन से लौटा लाने के लिए तैयार हो गये।

राम को वापस लाने के लिए भरत की वन-यात्रा

उधर राम चित्रकूट पहुंच गये। पर्वत की सुषमा और प्राकृतिक सौन्दर्य देख राम मुग्ध हो गये। वहीं सीता और लक्ष्मण के साथ निवास करने लगे और अयोध्या के दुःख को भूल गये।

अयोध्या से प्रस्थान कर भरत शृंगवेरपुर में पहुंचे और रात वहीं टिके। उनकी सेना को देख निषादराज गुह पहले तो शंकित हुआ और सेना को तैयार रहने का आदेश दिया! पर जब भरत-गुह दोनों मिले तब गुह की यह आशंका कि भरत राम को मारने के लिए सेना लेकर जा रहा है—एकदम दूर हो गयी। भरत ने अपनी यात्रा का उद्देश्य बताया और गुह से चित्रकूट का मार्ग पूछा। गुह बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने भरत की यात्रा की सारी व्यवस्था कर दी। प्रयाग पहुंच कर भरत भारद्वाज ऋषि के आश्रम में गए। ऋषि को भी सेना देखकर शंका हुई। भरत ने जब अपना उद्देश्य स्पष्ट किया, तब ऋषि बड़े प्रसन्न हुए और चित्रकूट का मार्ग अच्छी प्रकार समझा दिया। गंगा पार करते ही भरत ने भी मुनिवेश के वल्कल वस्त्र और जटा इत्यादि धारण कर ली। यात्रा

करते-करते जब यह विशाल दल चित्रकूट के निकट पहुंचा तो सारे जंगल में प्रबल कोलाहल मच गया, जीव-जन्तु इधर-उधर भागने लगे, आकाश में धूल उड़नें लगी ! राम की आज्ञा से लक्ष्मण एक ऊंचे वृक्ष पर चढ़ दूर तक दृष्टि दौड़ा कर बोले–"आर्य ! सावधान हो जाएं। सीता को किसी सुरक्षित स्थान पर पहुंचा दें। धनुष बाण उठाएं। अयोध्या से भरत अपनी चतुरंगिणी सेना के साथ आ रहा है। निश्चय ही, वह हमें यहां मारनें के उद्देश्य से आ रहा है।" राम नें कहा—लक्ष्मण ! ऐसी शंका मत करो। भरत स्वभाव से ही साधु प्रकृति का है। वह निश्चय ही प्रेमवश मुझे मिलने आता होगा। उसके साथ किसी प्रकार का बुरा व्यवहार मत करना। इसमें मेरा ही अपमान है। यह भी सोचो कि अगर मैं भरत को मार कर स्वयं राजा बन जाऊं, तो यह मेरे लिए लोक-निन्दित काम होगा। निन्दित हो राज्यपद संभालने से संसार क्या कहेगा ? मैं भरत से तुम्हें सारा राज्य दिलवा दूंगा। भरत मेरी बात टालेगा नहीं। लक्ष्मण शान्त हो गये।

भरत का विलाप : राम के चरणों में

भरत अपनें दल को वन में खड़ा कर स्वयं शत्रुघ्न के साथ राम के पास पहुंचे। बड़े भाई को इस वेश में देख उन्हें बड़ी ग्लानि हुई। राम का चरण स्पर्श करने को ज्यों ही आगे बढ़े कि प्रेम-विह्वल हो मूर्च्छित हो बीच में ही गिर पड़े। राम नें तत्काल भरत को छाती से लगा लिया। दोनों की आंखों से अब अश्रुधाराएं बह रही थीं। भरत से पिता की मृत्यु का समाचार सुन राम विह्वल हो गये। रोते हुए बोले—भरत यह मेरा दुर्भाग्य है कि मेरे कारण ही पिताजी जी को प्राण त्यागनें पड़े। इतने में तीनों माताएं, गुरु वसिष्ठ, पुरोहित तथा मंत्रिगण के साथ वहां आ गयीं। भरत राम के चरणों को पकड़ कैकेयी के अपराधों की क्षमा मांगते हुए उनसे अयोध्या वापस जानें का आग्रह करनें लगे। राम ने कहा—भरत ! हमारे

सत्यप्रतिज्ञ पिता ने जो व्यवस्था बाँधी है, हमें उसी के अनुसार कार्य करना चाहिए। तुम अयोध्या-साम्राज्य के राजा बनो, मैं वन का राजा बनूँगा। शत्रुघ्न तुम्हारी और लक्ष्मण मेरी सेवा-सहायता करेंगे। हम चारों भाई अपना-अपना कर्त्तव्य पालन करें और पिता के सत्य धर्म की रक्षा करें—इसी में हमारा गौरव है। समस्त पुर-वासियों, मंत्रियों, तीनों माताओं—इत्यादि के प्रबल आग्रह और अनुरोध पर भी राम अपने निश्चय पर दृढ़ता से अटल रहे। जाबालि ऋषि ने धर्म-राज्य आदि को ढकोसलामात्र कह राम को राज्य सुख भोगने का परामर्श दिया। राम नें स्पष्ट कह दिया कि मैं ऐसा मर्यादा-विरुद्ध आचरण करने को कभी तैयार नहीं हो सकता। अन्त में भरत ने कहा—

> भ्रातः ! अपनी ये पादुकाएं मुझे दे दीजिए। मैं इन्हीं को सिंहासन पर रख मुनिवत् जीवन व्यतीत करता हुआ नगर से वाहर नन्दी ग्राम में ही रहूंगा और राज्य चलाऊंगा। यदि आप १४ वर्ष के अन्तिम दिवस बीतते ही अयोध्या न पहुंचे तो मैं प्राण त्याग कर दूंगा।

राम ने भरत को अपनी खड़ाऊं देते हुए उसे छाती से लगाया और कहा—"अब तुम सब दल-बल के साथ वापस लौट जाओ। तुम्हें मेरी शपथ, कभी माता कैकेयी के साथ दुर्व्यवहार न करना। मैं १४ वर्ष बीतते ही ठीक समय पर अवश्य पहुंच जाऊंगा।" राम ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से सबको प्रणाम किया और विदा ली। भरत अपने दल-बल सहित वापस अयोध्या आ गये।

राम ने चित्रकूट छोड़ पंचवटी के लिए प्रस्थान किया क्योंकि पशुओं सहित इतनी सेना और प्रजाजनों के आने से वह स्थान दुर्गन्धि युक्त हो गया था। साथ ही, चित्रकूट पर रहने से स्नेही जनों का स्मरण होता था। पंचवटी जाते हुए एक रात राम महर्षि अत्रि के आश्रम में ठहरे। प्रातः सन्ध्या-उपासना हवन के वाद जब राम

ने आगे चलने की आज्ञा मांगी तो ऋषियों ने कहा कि दंडक वन राक्षसों से आक्रान्त है। आप इन दुष्टों का अवश्य नाश करें।

भरत की वापसी : राम का दंडक वन में प्रवेश

अब राम ने सीता और लक्ष्मण के साथ दंडक वन में प्रवेश किया। ऋषियों ने राम का स्वागत करते हुए अपनी दुःखभरी कथा सुनाई। उन्होंने कहा—हे राम ! आप चाहे नगर में रहें या वन में, दोनों दशाओं में हमारे स्वामी और संरक्षक हैं। हम आपकी शरण में हैं, राक्षसों के अत्याचारों से हमें बचाइए। राम ने उन्हें सुरक्षा का पूर्ण आश्वासन दिया।

वन में आगे जाने पर यमराज सदश एक भयंकर विशालकाय राक्षस मिला। उसने सीता को अपनी गोद में जबरदस्ती उठा राम-लक्ष्मण से कहा—तुम जटाधारियों और मुनि वेश वालों के पास यह सुन्दर रमणी कैसे आयी ? यह तो मेरे काम की है, तुम यहां से भाग जाओ। राम-लक्ष्मण ने तत्काल बाण वर्षा द्वारा मृत-तुल्य कर गड्ढे में गाड़ दिया। उसी में वह मर गया। यहाँ से राम शरभंग ऋषि के आश्रम में गये। वे अति वृद्ध थे और स्वेच्छा से शरीर त्याग करने जा रहे थे। मृत्यु से पूर्व ऋषि ने राम से राक्षसों के आतंक को समाप्त करने की प्रार्थना की। इन ऋषियों ने राक्षसों के हाथों मारे गये अनेक ऋषियों के कंकाल दिखलाये। राम सबको अभयदान दे सुतीक्ष्ण के आश्रम में गये। वहां से आगे यात्रा करते हुए सीता ने राम को राक्षसों से वैर मोल लेने से रोका, पर राम ने कहा—ये साधुजन बड़ी आशा-विश्वास के साथ मेरी शरण में आये हैं। इनकी सहायता करना मेरा धर्म है। क्षत्रिय का यही कर्त्तव्य हैं। लगभग १० वर्ष तक इस प्रकार राम दंडकारण्य में रहे और संत्रस्त ऋषि-मुनियों के कष्टों को दूर करते रहे। वापस पुनः सुतीक्ष्ण के आश्रम में आकर राम अगस्त्य महर्षि के आश्रम की ओर चले।

दक्षिण प्रदेश के नेता अगस्त्य मुनि के आश्रम में

अगस्त्य मुनि दक्षिण प्रदेश में आर्य जाति के प्रभावशाली नेता थे। उनका आश्रम विन्ध्याचल पर्वत के पार दूसरी ओर था। राम-सीता लक्ष्मण जब आश्रम में आये, तब ऋषि ने शिष्य मंडली सहित उनका हार्दिक स्वागत किया। ऋषि ने कहा कि मैं आप तीनों का पूर्ण वृत्तान्त सुन चुका हूं। आपने इतने कष्टों को सहा—इससे आपकी आत्मिक शक्ति का परिचय मिलता है। अगस्त्य ऋषि ने दण्डकारण्य में ऋषि-मुनियों की दुर्दशा का वर्णन करते हुए दुर्दान्त राक्षसों का शीघ्र दमन करने का प्रबल अनुरोध राम से किया। इसके बाद अगस्त्य मुनि ने राम को कई अमोघ अस्त्र-शस्त्र प्रदान किये ताकि वे राक्षसों पर विजय प्राप्त कर सकें। राम द्वारा यह पूछे जाने पर कि "मैं आश्रम कहां बनाऊं" अगस्त्य ने सुझाव दिया कि यहां से लगभग दो योजन दूर "पंचवटी" स्थान में आश्रम बनाएं।

गोदावरी नदी के तट पर यह स्थान परम रमणीक था। राम को अत्यन्त पसन्द आया। लक्ष्मण से कहा कि यहीं कोई स्थान चुनकर पर्णकुटि बना लें। लक्ष्मण ने ज्येष्ठ भ्राता की आज्ञा का तत्काल पालन किया। राम ने यहां लगभग तीन वर्ष सुखपूर्वक व्यतीत किये।

पंचवटी में निवास : राक्षसों से मुठभेड़

एक दिन रावण की बहिन शूर्पणखा वहां आयी। उसने राम के सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए उसे अपना बनाने की आकांक्षा प्रकट की। राम ने उसकी कुचेष्टा पर मुस्कराहट के साथ कहा—मेरे साथ तो मेरी पत्नी सीता है। इसकी सौत बनने से तुम्हें क्या लाभ ? तुम लक्ष्मण से यह प्रस्ताव करो। वह युवा है और इस समय बिना स्त्री के है। वह राक्षसी तत्काल लक्ष्मण के पास अपना

प्रस्ताव लेकर पहुंची। लक्ष्मण ने उत्तर दिया कि मैं तो राम का दास हूं। दास की भार्या बनने से तुम्हें भी दासी बनना होगा। तुम्हारी सदृश राजकन्या के लिए यह शोभाजनक नहीं होगा। शूर्पणखा अब फिर राम की ओर बढ़ी और अपनी वासना में बाधक सीता को मारने को दौड़ी। राम ने लक्ष्मण से कहा—इस कामचारिणी पापिनी को उचित शिक्षा दो। यह सीधी बात मानने को तैयार नहीं है। लक्ष्मण ने तत्काल उसके नाक-कान काट दिये। वह चिल्लाती हुई राक्षसों के निवास स्थान की ओर भाग गयी।

इस वन में राक्षसों का एक शिविर था। यहां रावण के दो प्रतिनिधि खर और दूषण रहते थे। ये दोनों शूर्पणखा के भाई थे। अपनी बहिन को इस प्रकार विरूपित और रक्तसिंचित देख खर ने क्रोध से उन्मत्त हो, राक्षस सेना सहित राम के आश्रम पर आक्रमण कर दिया। शूर्पणखा भी साथ में थी। राम ने तत्काल अपने धनुष पर प्रत्यंञ्चा चढ़ा राक्षसों पर बाण-वर्षा कर दी। राक्षस इस आघात को भला कैसे सह सकते थे! वे सब राक्षस भूमि पर गिर पड़े और मृत्युलोक को प्राप्त हो गये। अब शूर्पणखा फिर रोती-चिल्लाती खर के पास गयी और बोली कि राम ने तो तुम्हारे सब राक्षस यमलोक पहुंचा दिये हैं। अब खर अत्यन्त क्रोधोन्मत्त हुआ अपने राक्षस-सेनापति दूषण को तत्काल सेना तैयार कर राम पर आक्रमण करने का आदेश देने लगा। खर और दूषण के नेतृत्व में राक्षस सेना ने अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हो राम के आश्रम को घेर लिया। राम ने सीता सहित लक्ष्मण को धनुष-बाण हाथ में ले वृक्षों के झुरमुट में छिपकर बैठे जाने का आदेश देते हुए अकेले ही राक्षसों के साथ युद्ध करने के लिए प्रस्थान किया। राम के तीक्ष्ण और अचूक बाणों के सम्मुख राक्षस सेना भला कब ठहर सकती थी! अपनी राक्षस सेना को भारी संख्या में भूशायी होते और अपने सेनापति दूषण को संग्राम में मरा हुआ देख खर ने वहां से भाग

जाने में ही अपना कल्याण समझा। जिस समय खर इस प्रकार हताश हो भाग जाने को था, उस समय उसके सेनापति त्रिशिरा ने अहंकार से कहा—"मैं राम को अभी मार गिरा देता हूं।" जब वह राम के सामने खड़ा ही हुआ, उसने तत्काल १४ बाण त्रिशिरा की छाती में मारे, जिससे वह अपने सारथी और रथ सहित यमलोक को प्राप्त हो गया। अब खर अत्यन्त क्रुद्ध हो राम को मारने के लिए भयंकर शस्त्रों के साथ उसकी ओर दौड़ा। अग्नि के समान तेजस्वी राम ने तीक्ष्ण बाणों से खर को गिरा दिया। इस प्रकार खर-दूषण अपनी विशाल सेना के साथ संग्राम भूमि पर सदा के लिए राम के बाणों से सो गये।

इस प्रकार दण्डकारण्य से राक्षसों की सत्ता सदा के लिए समाप्त हो गयी। अगस्त्य ऋषि ने राम-लक्ष्मण का इस अद्भुत वीरता और विजय प्राप्ति के लिए समस्त ऋषियों की ओर से धन्यवाद किया।

राक्षस राज रावण द्वारा सीता-अपहरण का षड्यन्त्र

खर-दूषण राक्षस और उनकी सेना के बड़ी संख्या में मारे जाने का समाचार रावण के पास अकम्पन द्वारा पहुंचा। इस पर वह बड़ा क्रुद्ध हुआ। इसी बीच शूर्पणखा भी वहां पहुंच गयी और उसने लक्ष्मण द्वारा अपने नाक-कान काटे जाने का सारा वृत्तान्त सुनाते हुए राम के अद्वितीय बल तथा सीता के अनुपम सौन्दर्य का वर्णन किया। शूर्पणखा ने अपने भाई रावण को बदला लेने के लिए उकसाते हुए सीता के अपहरण की सलाह दी। नारी को अपने भोग-विलास का ही एकमात्र साधन समझने वाले रावण को बहिन का यह परामर्श बड़ा पसन्द आया। उसने तत्काल अपने आकाश-गामी विमान को मंगवाया और उस पर आरूढ़ हो समुद्र पार ताड़का-पुत्र मारीच के आश्रम की ओर चल पड़ा। मारीच वहां मुनिरूप में कृष्ण मृगचर्म ओढ़े और सिर पर जटा धारण किये,

नियत आहार और तपस्या करता रहता था। मारीच ने उसका यथोचित सत्कार किया। तब रावण ने राम द्वारा दंडकारण्य पंचवटी में अपनी बहिन शूर्पणखा के अंगच्छेद और युद्ध में खर और दूषण तथा बड़ी संख्या में राक्षस-सेना के विनाश का सारा वृत्तान्त सुनाते हुए प्रतिशोध लेने की बात कही। मारीच ने रावण के इस कार्य को बुद्धिहीन बताते हुए बताया कि राम अत्यन्त धर्मात्मा, पराक्रमी और शूरवीर है, इसलिए उसका अनिष्ट करने के प्रयास में तेरा अपना ही भयंकर विनाश होगा। मारीच के बहुत समझाने पर भी रावण नहीं माना। इसके विपरीत वह मारीच पर बहुत बिगड़ा और उसे धमकी दी कि यदि वह उसकी बात नहीं मानेगा, तब रावण उसका अन्त कर देगा। बाध्य हो, मारीच को रावण की बात माननी पड़ी। रावण ने मारीच को छल-कपट से मृगरूप धारण कर राम के आश्रम में जाने और घास पर चरने की प्रेरणा देते हुए पूरे ब्यौरे के साथ समझाया कि किस प्रकार इस सुन्दर स्वर्ण रंग के मृग पर सीता मुग्ध होगी और किस प्रकार वह राम के आश्रम से जंगल की ओर उछलता-कूदता भागेगा, सीता राम से इस स्वर्ण रंगित मृग को पकड़ने और अपने आश्रम में रखने का प्रबल अनुरोध करेगी, राम इस भागते हुए मृग को जब बाण मारेगा, तब तुम "हा लक्ष्मण ! हा सीता" चिल्लाना ! इसे सुनते ही सीता व्यग्र हो समझेगी कि राम मारा गया है, वह लक्ष्मण को राम की कुशलता लाने के लिए बाध्य करेगी। इस समय सीता को अकेले देख मैं उसका अपहरण कर लूंगा। पत्नी-वियोग में राम अत्यन्त दुर्बल हो जाएगा कि मैं उसे अनायास ही जीत लूंगा अथवा वह विरह-अग्नि में स्वयं ही मर जाएगा।"

मारीच का स्वर्णमृग-वेश में राम की कुटिया में पहुंचना

मारीच इस दुःसाहस और रावण के इस छल-कपट पूर्ण षड्यन्त्र में सहयोगी नहीं बनना चाहता था क्योंकि वह राम के जग-विख्यात

गुणों से तथा उसके प्रबल शौर्य से परिचित था, पर रावण की धमकी से विवश हो, उसे यह मार्ग अपनाना पड़ा। सुन्दर और कमनीय मृग का रूप धारण कर मारीच राम के आश्रम में गया और सहजभाव से घास पर उछलते-कूदते हुए कभी सीता के पास और कभी राम के पास जाता। सीता तुरन्त इस स्वर्ण मृग पर मुग्ध हो गयी। महाकपटी मृग धरे-धीरे ही वन की ओर दौड़ने लगा। सीता के उसे जीवित पकड़े जाने के आग्रह पर राम धनुष-बाण सहित उसके पीछे-पीछे पकड़ने को दौड़े। यह मृग कभी राम के अत्यन्त समीप आ जाता और कभी चौकड़ी भर कर भाग जाता। इस प्रकार वह राम को आश्रम से बहुत दूर ले आया। यहां वह राम के बाण का जान-बूझकर शिकार हो गया। और जोर से "हा लक्ष्मण, हा सीता" चिल्लाया।

सीता का मृग के लिए आग्रह : राम-लक्ष्मण का प्रस्थान

इधर सीता मृग के जीवित पकड़ने और आश्रम में लाये जाने के लिए उतावली हो रही थी। जिस समय यह स्वर्णमृग आश्रम में आया और सीता उसकी ओर इतनी आकृष्ट हुई, उस समय लक्ष्मण ने सन्देह प्रकट करते हुए राम से कहा कि "मृग के रूप में यह मारीच राक्षस प्रतीत होता है क्योंकि वह छल-कपट करने में बड़ा चतुर है।" पर सीता ने लक्ष्मण को बोलने से रोकते हुए इस मृग को जीवित पकड़ कर लाने को जिद की। जब सीता ने "हा लक्ष्मण ! हा सीता" यह सुना तो वह राम के जीवित रहने के सम्बन्ध में शंकित हो उठी। उसने लक्ष्मण को राम की खोज के लिए जाने को कहा। लक्ष्मण के यह कहने पर कि "यह राक्षसों से घिरा अरण्य है और राम मुझे तुम्हें सौंप गये हैं, तुम्हारा अकेला रहना सुरक्षित नहीं" तब सीता लक्ष्मण की नीयत पर सन्देह करने लगी कि वह उसे अपने पास रखना चाहता है। लक्ष्मण को सीता के वचनों से मर्मान्तक वेदना हुई। वह तत्काल राम की खोज में चले गये।

संन्यासी वेश में रावण द्वारा सीता-अपहरण

रावण वहीं जंगल में छिपा बैठा था। वह संन्यासी वेश में तत्काल वहां आ गया। पहले सीता का परिचय पूछा। सीता ने अपने विवाह से लेकर वनवास तक की सारी कहानी सुनाई। संन्यासी वेश में रावण ने अपना परिचय दिया और सीता को अपनी पत्नी बनाने का प्रलोभन दिया। सीता ने अत्यन्त क्रोध के साथ रावण की भर्त्सना की। रावण ने बलात् सीता को उठाकर अपने आकाशयान में बैठा लिया। सीता रोती-चिल्लाती रही, पर उस दुष्ट राक्षस ने इसकी तनिक भी परवाह न की। मार्ग में गृध्रकूट निवासी महाराज जटायु को देख भयभीत और दुःखी सीता ने रोते हुए उससे कहा—हे आर्य जटायु! यह पापी रावण मेरा अपहरण कर लिये जा रहा है। तुम यह सारा वृत्तान्त श्री राम और लक्ष्मण से कह देना। वृद्ध जटायु ने रावण को इस नीच कर्म के लिए बहुत धिक्कारा पर उस दुष्ट राक्षस ने क्रोध में आ जटायु पर आक्रमण कर दिया। जटायु क्षताहत हो पृथ्वी पर गिर पड़ा और रावण तत्क्षण सीता को आकाशयान से उड़ा ले चला। सीता सारे रास्ते रोती-चिल्लाती और रावण को धिक्कारती रही। उसने एक पर्वत शिखर पर पाँच वानरों को देखा। सीता ने चुपके से अपने आभूषणों को एक छोटी पोटली में बांध नीचे फेंक दिया। यह काम उसने इसलिए किया ताकि जब श्री राम उसकी खोज में इधर आएंगे तो इन आभूषणों से उन्हें मुझे ढूंढने में सुविधा रहेगी। रावण सीता को ले लंका पहुंच गया और उसे पहले एक वर्ष तक अन्तःपुर में और फिर अशोक वाटिका में राक्षसियों के कड़े पहरे में रख दिया। रावण ने सीता को बहुत धमकाया, फुसलाया और डराया तथा अपनी रानी बन जाने के लिए जोर दिया। सीता ने अपने धर्म पर सर्वथा अडिग रहते हुए मर जाना स्वीकार किया पर रावण को अपना अंग तनिक भी स्पर्श करने न दिया।

सीता के वियोग में राम का विलाप

जिस समय राम वापस आ रहे थे तो मार्ग में ही लक्ष्मण को अपनी ओर आते देख तत्काल बोल उठे कि तुमने सीता को अकेले छोड़ अच्छा काम नहीं किया। लक्ष्मण ने जब सीता के सन्देह भरे कटु शब्दों का स्मरण कराया और बताया कि उन्हें सीता को अकेले छोड़कर बाध्य हो आना पड़ा, राम ने तब भी यही कहा—"लक्ष्मण ! तुमने विवेक से काम नहीं लिया। तुमने सीता के क्रुद्ध होने पर मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया।" आश्रम में पहुंचते ही जब वहाँ सुनसान पाया, तब राम ने कहा कि देखो, सीता कहाँ है, कहीं आस-पास जंगल में तो नहीं है। लक्ष्मण को निराश वापस आते देख राम स्वयं रुदन करते पागलों की तरह समस्त वन में वृक्ष, लता, पशु, पक्षी इत्यादि से पूछने और पुकारने लगे—"सीता ! सीता तुम कहां हो।" राम को इस प्रकार विलाप करते देख लक्ष्मण ने उन्हें ढाढस बंधाया और ढूंढने के लिए उत्साहित किया। कुछ दूर जाकर खून में लथपथ जटायु को देखा। पहले तो राम ने उसे ही सीता का भक्षक समझ अपने बाण से मारने का प्रयत्न किया परन्तु जटायु ने तब यह कहा कि—"तुम्हारे पिता दशरथ मेरे परम मित्रों में हैं" और सीता के रावण द्वारा अपहरण किये जाने तथा उस राक्षस के साथ युद्ध करने और अत्यन्त घायल होने का सारा वृत्तान्त सुनाया तथा यह भी बताया कि रावण सीता को दक्षिण की ओर ले गया है, तुम उधर ही खोज करने जाओ, और इन शब्दों के साथ ही जटायु के प्राण पखेरू हो गये। तब तो राम को अत्यन्त खेद हुआ और धनुष-बाण फेंक वे जटायु की लाश से लिपट रोने लगे। राम लक्ष्मण से बोले—"मेरे हित में इस उत्तम चरित्रयुक्त व्यक्ति ने अपने प्राण तक गंवा दिये। धर्मात्मा और साधुचरित्र प्रत्येक जाति और स्थान में हो सकते हैं। इस समय मुझे सीता-हरण का इतना दुःख नहीं है जितना इस आत्म बलिदानी गृध्र जाति के राजा जटायु का

है।" दोनों भाइयों नें जटायु की अन्त्येष्टि क्रिया कर अपनी खोज-यात्रा जारी की। मार्ग में कबन्ध नामक राक्षस मिला और उसने राम लक्ष्मण पर आक्रमण कर दिया। लक्ष्मण नें अपनी तलवार से तत्काल उसकी दोनों भुजाएं काट दीं। अब वह पृथ्वी पर गिर पड़ा और उसने दोनों का परिचय पूछा और इस जंगल में आने का प्रयोजन पूछा। लक्ष्मण द्वारा सारा वृत्तान्त सुन उसने सीता के सम्बन्ध में अपनी पूरी अनभिज्ञता प्रकट करते हुए बलपूर्वक यह कहा कि ऋष्यमूक पर्वत पर वानर जाति के नेता सुग्रीव से अवश्य मिलें, उससे मैत्री स्थापित करें। सीता की खोज में वह विशेष सहायक सिद्ध होगा क्योंकि वह भी अपने भाई बाली द्वारा प्रताड़ित होने से संकटग्रहण है। कबन्ध ने यह कहकर प्राण त्याग दिये। राम-लक्ष्मण ऋष्यमूक पर्वत की ओर चल पड़े। मार्ग में मतंग ऋषि के आश्रम में वृद्धा तपस्विनी शबरी का स्नेहपूर्ण आतिथ्य स्वीकार कर राम ने देवी की चिरकालीन आकांक्षा को पूरा किया।

ऋष्यमूक पर्वत पर : सुग्रीव हनुमान् से परिचय

ऋष्यमूक पर्वत पर स्थित किष्किन्धा नगरी में वानर जाति का राजा सुग्रीव अपने भाई बाली द्वारा राज्यच्युत हो अपने चार विश्वासपात्र मित्रों के साथ वहाँ छिप कर एक गुफा में रहता था। इन दोनों तेजस्वी, बलिष्ठ और सुन्दर युवकों को देख सुग्रीव शंकित हो उठा कि बाली के भेजे हुए गुप्तचर हैं और उसे मारने के लिए इधर आ रहे हैं। सुग्रीव के मंत्री हनुमान् ने उसे समझाया और सान्त्वना दी। सुग्रीव की प्रेरणा से हनुमान् एक याचक का वेश धारण कर इनके पास गया और शिष्टतापूर्वक प्रणाम कर मधुर और परिमार्जित भाषा में इनका परिचय पूछा। राम और लक्ष्मण का परिचय प्राप्त कर हनुमान् ने अपना परिचय सुग्रीव के मंत्री और सखा के रूप में देते हुए सुग्रीव पर उसके बड़े भाई बाली द्वारा किये गये अत्याचार का वर्णन किया और दोनों भाइयों से अनुरोध किया कि वे राजा

राम द्वारा बाली का वध : सुग्रीव-मैत्री की शर्त

सुग्रीव ने अब अपनी दुःख गाथा सुनाते हुए कहा कि उसके बड़े भाई बाली ने उसे तिरस्कार के साथ घर और राज्य से निकाल उसकी पत्नी तारा को भी छीन अपने पास रानी बनाकर रख लिया है। राम ने सुग्रीव को विश्वास दिलाया कि बाली को मार कर उसे राजगद्दी पर बिठायेंगे और पत्नी को भी उसे वापिस दिला देंगे। पर, सुग्रीव को राम की शक्ति पर सहज विश्वास नहीं आया और वह इसका प्रमाण चाहता था। लक्ष्मण द्वारा राम की शक्ति के प्रमाण का रूप पूछे जाने पर सुग्रीव ने कहा कि साल के सात वृक्षों को यदि एक ही बाण से काट कर गिरादें तो उसे राम के बलवान् और शक्ति युक्त होने का विश्वास हो जाएगा। राम ने जब सहज ही एक बाण से साल के सातों वृक्षों को काट गिराया, तब सुग्रीव बड़ा प्रसन्न और निश्चिन्त हो गया। अब राम बाली-वध के लिए तैयार हो गये।

किष्किन्धा नगरी में राजमहलों के पास जा सुग्रीव ने बाली को युद्ध के लिए ललकारा। बाली तत्काल बाहर आकर सुग्रीव से भिड़ गया। भयंकर मल्लयुद्ध होने लगा। राम वृक्षों की ओट में बाली को मारने के लिए खड़े रहे, पर उन्होंने एक भी बाण नहीं चलाया। सुग्रीव बाली से मार खाकर ऋष्यमूक पर्वत पर जब वापस आया तब बड़े क्रोध से राम को बोला—"आपने मुझे धोखा दिया। यदि आप बाली को नहीं मारना चाहते थे, तो पहले ही कह देते।" राम ने अपनी कठिनाई यह बतायी कि "तुम दोनों भाइयों की आकृति आपस में इतनी मिलती-जुलती है कि मैं अगर धोखे से तुम्हें मार देता तो फिर अनर्थ हो जाता। अब तुम कोई ऐसा चिह्न धारण कर लो जिससे तुम दूर से ही पहचाने जा सको।" सुग्रीव अब गजपुष्प की माला पहन पुनः किष्किन्धा गया और बाली को युद्ध के लिए फिर ललकारने लगा। बाली जब जोश के साथ युद्ध

करने के लिए अन्तःपुर से बाहर जाने लगा तब उसकी पत्नी तारा ने कहा कि सुग्रीव इतनी जल्दी तुम्हें ललकारने को आ गया है, निश्चय ही इसे कोई प्रबल सहायक मिल गया है। गुप्तचरों से पता चला है कि, अयोध्या के वीर धनुर्धर राजकुमार राम-लक्ष्मण दोनों इधर आये हैं और उसकी सहायता कर रहे हैं। इसलिए अब आप मत जाओ।" बाली ने तारा की चेतावनी अनसुनी करते हुए कहा कि "राम-लक्ष्मण श्रेष्ठ पुरुष हैं, वे मुझ पर क्यों हमला करेंगे ? मैं सुग्रीव को मारूंगा नहीं, केवल उसका अहंकार तोड़ दूंगा।" अब दोनों में मल्लयुद्ध प्रारम्भ हो गया। बाली के सामने सुग्रीव निस्तेज होने लगा। उसी समय राम ने बाली पर घातक बाण छोड़ा। रक्तधारा बहने लगी और वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। राम को देखकर वह समझ गया कि इनके बाण से ही वह मारा गया है। उसने राम को उपालम्भ देते हुए कहा कि "मैंने तो आपका कभी कोई अहित नहीं किया। फिर आपने अकारण ही मुझे क्यों मारा ?" राम ने कहा—तुम्हें मालूम होना चाहिए कि इस समस्त पृथ्वी पर इक्ष्वाकु वंश के राजा भरत का शासन है। उसका कर्त्तव्य है कि धर्मविरुद्ध आचरण करने वाले व्यक्तियों को दंड दे। उसके प्रतिनिधि के रूप में मैंने तुम्हें दंड दिया है। फिर तुमने अपने छोटे भाई को—जो पुत्रवत् होता है—राज-गद्दी से उतार, उस पर अत्याचार कर और उसकी पत्नी को अपने अन्तःपुर में रखे हुए हो। सुग्रीव मेरा मित्र है, उसकी सहायता करना मेरा कर्त्तव्य है। इतना अधर्म करते हुए तुम्हारा धर्म की दुहाई देना निरर्थक है।" बाली ने अपने पापों पर प्रायश्चित्त प्रकट करते और अपने एकमात्र पुत्र अंगद की रक्षा का हाथ राम के हाथों में सौंपते हुए अपने प्राण छोड़ दिये। राम ने अंगद की पूरी जिम्मेदारी संभालने का विश्वास बाली को देते हुए उसे मरने से पहले इस विषय में निश्चिन्त कर दिया। बाली की पत्नी तारा भी अत्यन्त दुःखी थी उसने भी राम को ऐसा अनुचित कार्य करने के

लिए कठोर उपालम्भ दिये। राम ने धर्म का उपदेश देते हुए तारा को शान्त किया। बाली की अन्त्येष्टि-क्रिया विधिवत् राम के आदेश से की गयी। कुछ समय बाद सुग्रीव का अभिषेक किष्किन्धा नगरी में धूमधाम से किया गया। वनवासी होने के कारण राम-लक्ष्मण नगरी में नहीं गये थे, बाहर ही रहे। अब सुग्रीव तारा और अंगद के साथ महलों में सुख-पूर्वक रहने लगा। उस समय वर्षाऋतु थी। सुग्रीव ने कहा कि इस ऋतु के समाप्त होते ही वह सीता के अन्वेषण का कार्य प्रारम्भ कर देगा। राम-लक्ष्मण नगरी से बाहर सुरम्य पर्वत की एक गुफा में रहने लगे।

सुग्रीव भोगविलास में मस्त : लक्ष्मण का क्रोध

वर्षा ऋतु समाप्त हो गई और शरत्-ऋतु का प्रारम्भ हो गया, पर सुग्रीव अन्तःपुर में भोगविलास में इतना मस्त हो गया कि उसे अपने वचन का स्मरण ही न रहा। रामने लक्ष्मण को आदेश दिया कि तत्काल किष्किन्धा जाकर उस कृतघ्न सुग्रीव को उसकी प्रतिज्ञा का स्मरण कराओ और चेतावनी दो कि यमलोक के द्वार अभी बन्द नहीं हुए हैं। उसे इतनी जल्दी बाली का अन्त क्या भूल गया है? लक्ष्मण तत्काल किष्किन्धा नगरी की ओर प्रस्थान कर राजप्रासाद के बाहर धनुष पर उच्च स्वर से टंकार करते हुए जब खड़े हुए तब सारी राजधानी में हलचल मच गई। जनता भयभीत हो इधर-उधर भागने लगी। अन्तःपुर में सन्देश पहुंचने पर सुग्रीव को स्वयं तो आने का साहस न हुआ, उसने अंगद को भेजा। लक्ष्मण ने उसे यह कहा कि "तुम क्यों आये हो? तुम्हारे कृतघ्न पिता को क्या बाहर आने का साहस नहीं होता?" अंगद ने जब यह सन्देश सुग्रीव को दिया तब भोगविलास के नशे में चूर वह अंडबंड बकने लगा। इसी समय हनुमान् को भी समाचार मिला और वे तत्काल सुग्रीव के पास पहुंचे। उसने सुग्रीव को उसकी भूल के

लिए फटकारा। अब सुग्रीव की उन्मत्तता कुछ मन्द हुई। उसे स्वयं तो लक्ष्मण के सम्मुख जाने का साहस न हुआ, उसने तारा को लक्ष्मण के सामने जाने को कहा क्योंकि, सुग्रीव के शब्दों में, "श्रेष्ठ और सत्पुरुष नारियों के सम्मुख किसी प्रकार के कठोर शब्द नहीं बोलते।" मृदुभाषिणी तारा ने राम के उपकार को स्वीकारते हुए कहा—"कामवासना के तीव्र होने पर मनुष्य सब कुछ भूल जाता है। ब्रह्मचर्य-व्रती होने के कारण आप कामतंत्र से परिचित नहीं हैं इसलिए हम पर इतने क्रुद्ध हैं।" तारा ने सुग्रीव के अपराध के लिए क्षमायाचना हुए करते लक्ष्मण से अन्तःपुर में आने की प्रार्थना की। वहां के ऐश्वर्य और सुखसज्जापूर्ण विविध रूप रंग के पदार्थों को देख लक्ष्मण पहले तो कुछ लज्जित हुए, फिर सुग्रीव के चारों ओर खड़ी अनेक अलंकृत रमणियों को देख क्रुद्ध हो उसे फटकारने लगे। सुग्रीव घबरा कर, अपराधी की तरह, चुपचाप नतमस्तक हो खड़ा हो गया। सुग्रीव द्वारा विनम्र रूप से क्षमायाचना करने पर लक्ष्मण शान्त हुए और उसके आदर-सत्कार के पश्चात् उसके समीप ही उत्तम आसन पर विराजमान हो गये। सुग्रीव के आदेश और हनुमान् की प्रेरणा पर समस्त वानरयूथपतितत्काल किष्किन्धा नगरी में एकत्र होने लगे। लक्ष्मण सहित सुग्रीव एक स्वर्णपालकी पर बैठे राम के निवास स्थान पर पहुंच गये। वहीं नल-नील, अंगद, जामवन्त, सुषेण, केसरी इत्यादि सेनापति अपने सर्वोच्च सेनापति हनुमान् के नेतृत्व में हजारों की संख्या में वानर सेना सहित एकत्र हो गये।

वानर सेना सीता की खोज में सब दिशाओं की ओर

राम के सामने सुग्रीव ने यूथपति सहित समस्त वानर सेना को इस सम्मेलन का प्रयोजन बताते हुए प्रत्येक नायक को अपने दल सहित चारों दिशाओं में जाने और सीता की खोज करने का आदेश दिया। दक्षिण दिशा में सीता के मिलने की अधिक सम्भावना को

जानते हुए अंगद की अध्यक्षता में हनुमान्, नील, जाम्वन्त आदि चुने हुए वीर वानर नियुक्त किये गये। सुग्रीव ने हनुमान् को अलग बुलाकर कहा कि "मुझे तुम्हारा बड़ा भरोसा है। तुम्हारे ही उद्योग से यह कार्य सफल हो सकेगा। तुम सीता की खोज के लिए विशेष प्रयत्न करना।" राम भी हनुमान् से प्रथम मिलन-दिन से ही विशेष प्रभावित थे। उन्होंने पवनसुत को अपने पास बुला उसे अपने नाम की सोने की अंगूठी देते हुए कहा "मेरा विश्वास है, सीता की खोज में तुम अवश्य सफल होगे। यदि तुम्हें सीता मिले तो उसे मेरी यह अंगूठी दे देना। इसे पाकर जहां वह प्रसन्न होगी, वहां साथ ही तुम पर तत्काल विश्वास कर लेगी। तुम उसका पूरा वृत्तान्त पूछना और उसे आश्वासन दिलाना कि उसके उद्धार का उपाय मैं शीघ्र ही करूंगा।"

सुग्रीव ने सब वानरों को इस महान् कार्य के लिए विशेष प्रेरणा देते हुए घोषणा की कि एक मास के भीतर सीता का पता लग जाना चाहिए और जो वीर सबसे पहले यह कार्य पूरा कर देगा, उसे मुंहमांगा पारितोषिक दिया जाएगा।"

हनुमान् द्वारा समुद्र तैरना : लंका में प्रवेश

राजा का आदेश पाते ही सब वानर जयकार बोलते हुए अपने-अपने नायकों के नेतृत्व में चारों दिशाओं की ओर बड़े उत्साह और साहस के साथ चल पड़े। अंगद, हनुमान्, जाम्वन्त आदि विन्ध्याचल को पार कर जब दक्षिण में समुद्र तट पर पहुंचे, तब वे हताश हो सोचने लगे कि अब किधर जाना होगा ? वापस किष्किन्धा जाना संभव नहीं था क्योंकि सुग्रीव की आज्ञा थी कि बिना उद्देश्य सिद्ध किये वापस नहीं आना है। आगे का रास्ता समुद्र के कारण बन्द था। इसी उधेड़बुन में जब ये वानर-नेता पड़े हुए थे, उसी समय गृध्र जाति का एक बलवान् वनचारी व्यक्ति सामने आ गया। वानर उसे देख पहले तो डर के कारण भागे, फिर जब उसने

बताया कि उसका नाम सम्पाति है और वह जटायु का बड़ा भाई है, तब वानरों ने उसे बताया कि उसका छोटा भाई जटायु रावण-राक्षस के साथ युद्ध करता मारा गया है। यह संवाद सुन वृद्ध सम्पाति को बड़ा कष्ट हुआ। उसने वानरों से उनका परिचय पूछा। उनका सब परिचय और यात्रा का उद्देश्य सुन सम्पाति ने कहा कि "मेरे भाई के हत्यारे रावण का बदला मैं तो अब अतिवृद्ध और कृश होने के कारण ले नहीं सकता पर तुम्हें इतना बतला दूं कि कुछ मास पूर्व मैंने भी रावण को "हा राम ! हा लक्ष्मण" कहती एक अपहृता स्त्री के साथ आकाश मार्ग से जाते और सुनते देखा था।" सम्पाति ने नीचे दक्षिण की ओर जाने और वहां से समुद्र को पार करने तथा लंका में सीता को मिलने की सारी विधि बतला दी। उसने इन वानर यूथपति को पूर्ण सफलता के लिए आशीर्वाद दिया। सम्पाति के बताये मार्ग से ये वानर-नेता कई दिन की कठिन यात्रा के बाद जब पार न कर सकने योग्य दक्षिणी सागर के तट पर पहुंचे तब प्रश्न यह पैदा हुआ कि समुद्र को कैसे पार किया जाए? पहले अंगद ने अपने को प्रस्तुत किया। पर वयोवृद्ध जामवन्त ने सुझाव दिया कि सेनापति होने के कारण अंगद को दूरस्थ देश में भेजना उपर्युक्त नहीं है। हमारे बीच हनुमान् सदृश वीर साहसी, ब्रह्मचारी है। उसे ही इस महान् लक्ष्य की पूर्ति का दायित्व उठाने का अनुरोध करना चाहिए। अब सबकी दृष्टि हनुमान् पर पड़ी। वह अभी तक चुपचाप विचारमग्न एक ओर बैठा था। जाम्बवन्त ने जब उसे इस संकट को झेलने के लिए ललकारा तब वह वीर चुप न बैठ सका। उसने सिंह की तरह गरजते हुए कहा "मैं अपने स्वामी राम के इस प्रिय कार्य को अवश्य पूरा करूंगा।" इन शब्दों के साथ वह लंगोटबन्द ब्रह्मचारी समुद्र के अथाह जल को पार करने के लिए उसमें कूद पड़ा। जब हनुमान् इस प्रकार समुद्र को पार कर रहे थे, तब नाग-माता सुरसा नाम

की जल में रहने वाली राक्षसी ने उसका मार्ग रोकते हुए अपने विशाल मुख से हनुमान् को निगल जाने का प्रयत्न किया। हनुमान् के बारम्बार यह कहने पर भी कि वह राम हित कार्य के लिए यह संकटपूर्ण समुद्र-सन्तरण कर रहा है, जब वह राक्षसी नहीं मानी। तब हनुमान् ने अपने बुद्धि-चातुर्य और बल से उसके विशाल मुख को शक्तिहीन कर दिया और अपनी यात्रा जारी रखी। समुद्र पार करने में अन्य भी कई प्रकार के विघ्न जलचरों और भयंकर चट्टानों द्वारा आये पर यह अनोखा वीर उनसे तनिक भी हताश न होता हुआ आगे बढ़ता रहा। अन्त में हनुमान् लंका तट पर पहुंच गये।

हनुमान अशोक वाटिका में : सीता से भेंट

वहां पहुंचते ही "लंका" नामक राक्षसी ने हनुमान् के नगर में प्रवेश करने में बाधा डाली और लड़ने को उद्यत हो गयी। हनुमान् ने उसे एक थप्पड़ से भूमि पर जब गिरा दिया, तब उसने गिड़-गिड़ाकर हनुमान् को मार्ग दे दिया। इस समय रात हो गयी थी। चाँदनी रात में लंका का सौन्दर्य दुगुना हो गया था। हनुमान् सीता की खोज में रावण के महलों में जब घुसे तब वहां मद्यपान से बेहोश पड़ी रमणियों और राक्षसों को देखते-देखते वे निराश हो गये क्योंकि उनमें सीता कहीं न थी। इसी समय अनेक विशाल वृक्षों और पुष्प-पौधों से भरपूर अशोक वाटिका पर उसकी दृष्टि गयी। वहां एक नदी मन्दगति से बह रही थी। पास ही ऊंचा अशोक वृक्ष था। इस समय प्रातःकाल हो रहा था। हनुमान् ने सोचा "प्रातः और सायंकाल सन्ध्या करने वाली सीता यहां स्नानादि और सन्ध्या करने अवश्य आएगी। अगर वह जीवित होगी तो उसके दर्शन यहीं हो जाएंगे।" ऐसा सोच हनुमान् उस वृक्ष के सघन पत्तों में छिपकर बैठ गये। इस अशोक वाटिका में एक विशाल और एक सहस्र स्तम्भ वाला गोलाकार भवन था जिसके भीतर हनुमान् ने मैले वस्त्र पहने, उपवास करने के हेतु

अत्यन्त दुर्बल, अत्यन्त दुःखी और बार-बार ठंडे और लम्बे सांस लेती एक सुन्दर और निर्मल स्त्री को—जो राक्षसियों से घिरी हुई थी—बैठे देखा। हनुमान् समझ गये कि यही सीता है। इस प्रकार सीता को खोज निकालने पर हनुमान् बड़े प्रसन्न हुए। मन में बार-बार राम का चिन्तन करते हुए अपने आपको राम के चरणों में बैठा समझने लगे। फिर सीता के लिए विलाप करते हुए हनुमान् के नेत्रों से अश्रुधाराएं बहने लगीं। एक सौ सुन्दर रमणियां जिसके पीछे स्वर्णदीपक, स्वर्णछत्र और मदमस्त नेत्रों सहित चल रही थीं—ऐसा रावण कुछ समय बाद इस भवन में प्रविष्ट हुआ। रावण के तेजस्वी और प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व को देख हनुमान् एकदम स्तब्ध रह गये। उन्होंने तत्काल वृक्ष के सघन पत्तों में अपने को छिपा लिया। रावण को देखते ही सीता वायु से कम्पित केले के पत्तों की तरह कांपने लगी। राम के वियोग से सीता एक ओर जहां अत्यन्त दुर्बल और क्षीणकाय हो गयी थी, वहाँ दूसरी ओर, रावण के आतंक, भय और दीर्घकालीन उपवास तथा तपस्या के कारण एकदम कृश, निस्तेज और दीन दिखाई दे रही थी। रावण ने आते ही सीता से प्रणय याचना करनी प्रारम्भ कर दी और कहने लगा "तू मुझे स्वीकार कर ले।" साथ में रावण ने यह भी कहा "हे मैथिलि! यदि तू न चाहेगी तो कामनाहीन तुम्हारे शरीर का मैं स्पर्श भी नहीं करूंगा भले ही कामदेव मेरे शरीर में प्रविष्ट होकर मेरी कामाग्नि को प्रज्वलित करता रहे। तुम मुझे अपना समझकर मेरे साथ यथार्थ प्रेम करो। अब किसी प्रकार का शोक मत करो। राम का ध्यान छोड़कर तू मेरे साथ आनन्दपूर्वक, पान, विहार और रमण कर।

रावण की सीता को धमकी : सीता का प्राण-त्याग निश्चय

रावण और अपने मध्य तृण को रखती हुई सीता ने अत्यन्त

क्रोध के साथ राक्षसराज को कहा "जैसे ब्रह्म प्राप्ति रूपी सिद्धि पापिष्ठ जन द्वारा चाहने योग्य नहीं होती, वैसे ही मैं भी तेरे चाहने योग्य नहीं हूं। मैं पतिव्रता हूं, मुझसे इस निन्दित दुष्कर्म की आशामत कर।" यशस्विनी सीता ने इन शब्दों के साथ रावण की ओर से अपना मुख फेर और पीठ करके कहा—"हे निशाचर! जैसे अपनी स्त्री की रक्षा करनी चाहिए, उसी प्रकार पर-स्त्रियों की भी रक्षा करनी चाहिए। तुम जैसे अविवेकी राजा को प्राप्त कर, तुम्हारे ही इन जघन्य अपराधों के कारण धन-धान्य और रत्नों से भरी यह लंका शीघ्र नष्ट हो जाएगी। हे रावण! तू अपने ऐश्वर्य और धन-सम्पत्ति से मुझे लुभा नहीं सकता। जैसे सूर्य की प्रभा सूर्य से पृथक् नहीं हो सकती, इसी प्रकार मैं भी राम से पृथक् नहीं हो सकती। मैं श्री राम की अनन्य परायणा धर्मपत्नी हूं।" रावण ने क्रोध के आवेग में आकर सीता को कहा—"मैंने तुम्हारे लिए जो अवधि निश्चित की थी, उसमें अभी दो मास शेष हैं। इस अवधि के बीतने पर भी यदि तुमने मुझे पतिरूप में स्वीकार न किया तो मेरे पाचक लोग मेरे प्रातराश के लिए तेरे टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे।" सीता ने उत्तर दिया "हे राक्षसाधम! अमित तेजस्वी श्री राम की धर्मपत्नी से तूने जो पापपूर्ण बातें कही हैं, उस पाप से तू कहां जाकर छुटकारा पाएगा? श्रीराम हाथी के समान हैं और तू क्षुद्र खरगोश की भांति है। क्या मुझसे इक्ष्वाकुनाथ श्रीराम की निन्दा करते हुए लज्जा नहीं आती! जब तक तू राम के समक्ष नहीं पड़ता, तब तक तू जो चाहे सो कह ले। हे पापी! इस प्रकार खोटे वचन बोलते हुए तेरी जिह्वा गल कर गिर क्यों नहीं पड़ती? हे रावण! श्री राम का आदेश न होने से और तपश्चर्या की रक्षा के कारण मैं भस्म करने में समर्थ होकर भी अपने तेज से तुझे भस्म नहीं कर रही हूं।" रावण ने वहां से जाते हुए राक्षसियों को आदेश दिया कि "तुम किसी प्रकार भी ऐसे उपाय करो जिससे सीता मेरे

वश हो जाए।" अब राक्षसियों ने विविध प्रकार से सीता को धमकाना, डराना और रावण की बात न मानने से भयंकर परिणामों से सावधान करना प्रारम्भ किया। इसके साथ ही रावण के ऐश्वर्य, शक्ति, वीरता, पराक्रम आदि का वर्णन कर अनेक प्रलोभन भी दिये। इस प्रकार सीता चारों ओर से सन्ताप की अग्नि में झुलसने लगी। रो-रो कर उसके आंसू भी सूख गये। सब ओर से अपने को असहाय और निराश्रित देख सीता ने अपने प्राणों को समाप्त करने का निश्चय किया।

त्रिजटा का सीता को आश्वासन

सीता की इस दयनीय स्थिति को देख त्रिजटा नाम की एक वृद्धा राक्षसी नें अन्य राक्षसियों से कहा—"अरी पापिनियो! तुम लोग सीता को किसी प्रकार हानि नहीं पहुंचा सकतीं। मैंने पिछली रात एक स्वप्न देखा है जिसके अनुसार राम के किसी दूत ने यहाँ आकर सारी लंका को भस्म कर दिया है और यह नगरी समुद्र में विलीन हो गयी। मैंने यह भी स्वप्न में देखा कि रावण पुष्पक विमान से पृथ्वी पर गिर पड़ा है। उसका सिर मुंडा हुआ है और वह काले वस्त्र पहने हुए है।" इस राक्षसी नें कहा कि तुम अब सीता को कठोर वचन मत कहो और हम सब मिलकर सीता के अनुग्रह की कामना करें।

सीता-हनुमान् वार्तालाप

हनुमान् वृक्ष पर बैठा यह सब देख-सुन रहा था। उसने सोचा कि अगर मैं सीता को बिना मिले लौट जाऊंगा तो यह यशस्विनी अपनी रक्षा का कोई उपाय न देख निश्चय ही प्राण त्याग देगी और जब राम पूछेंगे कि सीता ने मेरे लिए क्या कहा था तब मैं क्या उत्तर दूंगा! इसलिये हनुमान् ने वृक्ष पर बैठे सामान्य भाषा में राम का गुण-वर्णन मधुर स्वर से सीता के कानों तक पहुंच सकने

वाली ध्वनि में करना प्रारम्भ किया। सीता सुनते ही चौंक गयी और ऊपर वृक्ष की ओर देखने लगी। वहां उसे एक व्यक्ति बैठा दिखाई दिया। उसे देखते ही वह घबरा गयी और "हा राम! हा लक्ष्मण!!" कहकर रोने लगी। अब हनुमान् नीचे उतर आये और सीता को प्रणाम करके बोले—हे देवी! आप कौन हैं? क्या आप किसी प्रिय स्वजन के वियोग से पीड़ित हैं? क्या आप महात्मा राम की धर्मपत्नी सीता तो नहीं हैं? सच कहिए।"

सीता के जीवन में, चिरकाल के बाद, ऐसा अवसर आज आया था जब उसने श्रीराम का नाम सुना और किसी ने अत्यन्त सहानुभूति से उससे बातचीत की। सीता को इससे कुछ शान्ति मिली। उसने अपना सारा परिचय दिया और उसका भी परिचय पूछा। हनुमान् हर्ष से पुलकित हो बोले—देवी! मैं श्री राम का दूत हनुमान् हूं। आपके स्वनाम धन्य पतिदेव ने आपका कुशल समाचार जानने के लिए मुझे भेजा है। उनके छोटे भाई लक्ष्मण ने आपको प्रणाम कहा है। सीता को जहाँ इस आकस्मिक घटनासे अपार हर्ष हुआ, वहाँ सन्देह भी हुआ कि कहीं यह रावण का ही दूत न हो! हनुमान् ने अपना सारा परिचय देते हुए सीता द्वारा आकाश से फेंके गये आभूषणों और राम-सुग्रीव की भेंट का सारा विवरण सुनाने के बाद राम द्वारा अपने नाम वाली अंगूठी जब सीता के सम्मुख उपस्थित की, तब अपने प्रियतम की इस स्नेह भेंट को हृदय से लगाते हुए हर्ष और शोक से विह्वल सीता के नेत्रों से अनायास ही अश्रुधारा बह चली। वह बोली—"कपिवर! तुम अवश्य ही मेरे स्वामी के विश्वासपात्र हो। तुमने उनका और मेरा बहुत बड़ा उपकार किया है। तुम उनके विषय में मुझे कुछ और बताओ।" इस प्रकार सीता ने राम के कुशल-मंगल, वन-निवास के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न किये और यह भी पूछा कि कहीं राम हताश तो नहीं हो गये हैं, लक्ष्मण सुख से तो हैं, राम तो उसे मुझ से भी अधिक

चाहते हैं।" जब सीता ने यह सुना कि ग्रापके वियोग में राम को नींद भी नहीं ग्राती है ग्रौर लक्ष्मण उनकी निरन्तर सेवा करते हैं, तब वह राम की ऐसी दशा सुन बड़ी खिन्न हुई। जब हनुमान् ने कहा—देवी ! तुम मेरी पीठ पर बैठ जाओ, मैं तुम्हें अभी समुद्र पार कर श्रीराम के पास ले जाता हूं, तब सीता ने कहा कि यह सम्भव नहीं है। इसमें कई खतरे हैं। ग्रगर राक्षसों ने बीच में ग्राकमण कर दिया, अथवा मैं ही डर कर समुद्र में गिर गयी तब क्या होगा ?

इसके बाद हनुमान ने सीता के चरणों में नम्रता से नमस्कार कर उनसे विदा ली। सीता ने कहा कि राम से कहना कि मेरा इस दुर्दशा से शीघ्र उद्धार करें, मैं अब दो मास से ग्रधिक जीवित नहीं रहूंगी।

सीता द्वारा राम के लिए एक आभूषण की भेंट

इसके बाद सीता ने राम के प्रति ग्रपने स्नेह-स्मरण के चिह्न-स्वरूप अपने सिर का एक आभूषण हनुमान् को भेंट किया। हनुमान् ने आदर के साथ उसे अपने पास सुरक्षित संभाल लिया और विश्वास दिलाया कि शीघ्र ही महाधनुर्धारी राम और लक्ष्मण लंका पर ग्राक्रमण कर आपका उद्धार करेंगे। आप कोई चिन्ता ग्रब न करें। सीता ने साश्रु नयनों के साथ हनुमान को आशीर्वाद देते हुए कहा—"जाओ महावीर ! तुम्हारी यात्रा मंगलमय हो।"

लंका में हनुमान् की विध्वंस लीला

हनुमान् ने ग्रपने हृदय में सोचा कि "मेरा मुख्य कार्य सीता की खोज ग्रौर उनके दर्शन तो समाप्त हो गया। पर मुझे शत्रु के सम्मुख राम की वीरता का परिचय देने के लिए यह दिखाना होगा कि ग्रगर मैं अकेला ही इतना बलवान् हूं, तो मेरे स्वामी और सेनापति कितने अधिक बलवान् होंगे ! रावण को सोचना पड़ेगा कि

राम के साथ युद्ध करना और विजय प्राप्त करना कोई बच्चों का खेल नहीं है।" यह निश्चय कर हनुमान् ने अशोक वाटिका में विध्वंस-लीला प्रारम्भ कर दी। वृक्षों को उखाड़-उखाड़ इधर-उधर फेंकना, उन्हें आग लगाना और अशोक वाटिका के पहरेदारों को मौत के घाट उतारना प्रारम्भ कर दिया। सारी वाटिका विध्वस्त हो गयी। राक्षसियाँ भय के मारे रोने-चिल्लाने और इतस्ततः भागने लगीं। वे सीता के पास पूछने गयीं कि "यह कौन इतना अदम्य बलशाली है, कहाँ से और किसका भेजा हुआ है।" सीता ने कहा—"मुझे क्या मालूम यह कौन है? तुम राक्षसों की माया को भला मैं क्या जान सकती हूं। सांप के पैरों को सांप ही पहचान सकता है।" तब ये राक्षसियां रावण के पास रोती-पीटती गयीं। रावण इस वृत्तान्त को सुन एकदम आग-बबूला हो गया और उसने अपने सदृश महाबली किंकर राक्षस के नेतृत्व में एक टुकड़ी अशोक-वाटिका भेजी। हनुमान् ने उच्च स्वर से घोषणा की—"मैं पवनपुत्र हनुमान् हूं और श्रीराम का दास हूं। शत्रु का युद्ध में नाश करने यहाँ आया हूं। जिसने मरना हो, वह मेरे सामने आ जाए।" यह कहते ही इस महाबली ने राक्षसों की टुकड़ी पर हमला बोल दिया। किंकर राक्षस और उसके सैनिक वहीं हताहत हो गये। जो कुछ बचे, वे रावण के महलों में अपनी दर्दभरी कहानी सुनाने पहुंचे। इधर हनुमान ने अशोक वाटिका का विध्वंस करने के पश्चात् रावण के चैत्यप्रासाद (राक्षसी यज्ञशाला, जहां मद्य-मांस का प्रयोग होता है) का नाश कर डाला। अब रावण ने जम्बुमाली नामक अपने महाबली और अत्यन्त क्रूर सेनापति को भेजा। हनुमान् ने अशोक वाटिका से लाये "परिघ" नामक अस्त्र से इस जम्बुमाली को परलोक भेज दिया। हनुमान् ने सातों मंत्रि-पुत्रों का वध करने के बाद रावण द्वारा भेजे गये सेनापतियों—विरूपाक्ष, यूपाक्ष, दुर्धर, प्रभास और भासकर्ण—के साथ अकेले ही युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया।

वह तत्काल दुर्धर के रथ पर कूद कर बैठ गया और उसका प्राणान्त कर एक शाल के वृक्ष से विरूपाक्ष और यूपाक्ष के साथ लड़ने लगा। इन दोनों को पंचलोक को पहुंचा भासकार्ण को भी शीघ्र ही सदा के लिए भूमि पर सुला दिया। रावण द्वारा भेजे गये अक्षयकुमार को यमलोक पहुंचाने के बाद इन्द्रजित् (मेघनाद) जब रणक्षेत्र में आया तब उसने ब्रह्मास्त्र द्वारा हनुमान् को पाशों में बांध रावण के दरबार में उपस्थित किया। यहां रावण-हनुमान् के मध्य कई प्रश्नोत्तर हुए। हनुमान् ने निर्भयता से कहा कि "मैं पवन देव का पुत्र हनुमान् सीता की खोज में समुद्र को पार कर यहां आया। घूमते फिरते सीता को देखा। आपको पराई नारी को घर में रखने का कोई अधिकार नहीं है। राम के साथ वैर करना मृत्यु को मोल लेना है। उसके सदृश त्रिलोक में कोई वीर नहीं है। इसलिए अगर तुम अपना कल्याण चाहते हो तो सीता को श्रीराम के पास वापस भेज दो। अगर तुम ऐसा नहीं करोगे तो सीता के तेज और राम के शौर्य से तुम दग्ध हो जाओगे। राम से वैर करने का दुःसाहस न करें। लोक की समस्त शक्तियाँ मिलकर भी युद्ध में महापराक्रमी राम का सामना नहीं कर सकेंगी।"

रावण द्वारा हनुमान् के वध का आदेश : विभीषण का सत्परामर्श

रावण हनुमान् के इन स्पष्ट वचनों को सुन आग-बबूला हो गया। उसने तत्काल हनुमान् के वध का आदेश दिया। इसी समय रावण के छोटे भाई विभीषण ने बीच में हस्तक्षेप करते हुए कहा "राजन्! आप क्रोध में आकर कोई अनुचित काम न करें। आपको पता ही है कि दूत अवध्य होता है। हनुमान् तो किष्किन्धा के राजा सुग्रीव का दूत है। इसे आप अन्य जो चाहें दण्ड दे सकते हैं पर इसका वध तो किसी प्रकार भी न्यायसंगत नहीं है।" रावण

को विभीषण की यह बात समझ में आ गयी। उसने वध के आदेश को रोकते हुए यह आज्ञा दी कि वानर जाति को अपनी लांगूल बड़ी प्रिय होती है, अतः इसकी लांगूल में अग्नि लगाकर इसे लंका में घुमाया जाए।

लांगूल का अर्थ पूंछ होता है। हनुमान् की पूंछ तो नहीं थी, वानर जाति वन में निवास करने वाली एक वीर मनुष्य जाति थी। हनुमान् का वर्णन करते हुए पहले कहा गया है कि वह वेद-शास्त्र का ज्ञाता और शुद्ध संस्कृत भाषा बोलने वाला था। जब श्री राम-लक्ष्मण से उसकी पहली भेंट हुई, तब श्री राम ने हनुमान् के गम्भीर वेदज्ञान शुद्ध भाषण शैली, शिष्टाचार, विनम्रता आदि गुणों की बड़ी प्रशंसा की थी। आज भी विश्व के कई देशों के विशिष्ट नाम पशु-पक्षियों पर हैं, जैसे ब्रिटेन को "जान बुल," रूस को "रशियन बीयर" और हिटलर के शासनकाल में जर्मनी को "ईगल" कहा जाता था। इस प्रकार एक अत्यन्त चंचल, चुस्त, गतिशील और प्रतिभाशाली जाति का नाम वानर था। "लांगूल" (पूंछ) इस जाति का राष्ट्रीय चिह्न था। प्रत्येक जाति को अपना राष्ट्रीय चिह्न अति प्रिय होता है। रावण नें हनुमान् को अपमानित करने के लिए उसके राष्ट्रीय चिह्न को अग्नि लगाने का आदेश दिया।

वीरवर हनुमान् नें इस प्रज्वलित लांगूल का भी शत्रुनाश की दिशा में उत्तम उपयोग किया। पवनसदृश वेग गति से कूदते-फांदते हनुमान् नें रावण के प्रमुख सेनापतियों और राज्य-अधिकारियों जैसे—प्रहस्त, वज्रदंष्ट्र, शुक, सारण, इन्द्रजित्, जम्बुमालि, सुमालि—और नगर के समृद्ध तथा अन्न वस्त्र, द्रव्य, मणि-मुक्ता इत्यादि से भरपूर घरों को जला दिया और रावण के प्रासाद को भी भस्म कर दिया। अब उन्होंने वापस लौटने का निश्चय किया। पर इससे पूर्व वह सीता के एक बार पुनः दर्शन

करना चाहते थे ताकि कहीं अशोक वाटिका को भस्म करते हुए उस पर कोई आंच न आयी हो तथा सीता को यह भी विश्वास हो जाए कि राम का एक दूत जब इतना शत्रु नाश कर सकता है, तब राम की सेना कितनी बलवती होगी ! फलतः हनुमान् पुनः अशोक वाटिका में सीता से मिलने गये। हनुमान् द्वारा लंका में किये अग्निदाह और कई सेनापतियों के मारे जाने के समाचारों से सीता इस समय पर्याप्त आश्वस्त थी। उसने हनुमान् को आशीर्वाद देते हुए पुनः अनुरोध किया कि राम उसे शीघ्र यहां से मुक्त कराएं।

हनुमान् की वापसी

हनुमान् अब वापस जाने का उद्योग करने लगे। उनकी लंका-यात्रा से राम के कई काम सिद्ध हो गये। सीता का पता तो लग हो गया, साथ ही राक्षसों की नगरी में राम-सुग्रीव और वानर-सेना की धाक जम गयी। सीता को अब राम की विजय में किसी प्रकार का सन्देह नहीं रहा। हनुमान् आकाश-यान से जब महेन्द्र पर्वत की चोटी पर उतरे, तब अंगद, जामवन्त आदि वानर-सेना-नायकों की जो चिरकाल से उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे—प्रसन्नता का पारावार न रहा। हनुमान् को उन्होंने अपने हृदय से लगा लिया और चारों ओर से "हनुमान् की जय" "पवनसुत की जय" के नारे लगाये जाने लगे। वानर-सेना हर्षोन्मत्त हो उछल-कूद करने लगी। सीता के सम्बन्ध में पूरी जानकारी सुनने के लिए सारी सेना उत्सुक थी। हनुमान् ने सारा वृत्तान्त व्यौरे के साथ सुनाने के बाद यह भी कहा कि "लंका का राजा रावण कोई सामान्य शत्रु नहीं है। प्रबल युद्ध से ही वह परास्त हो सकेगा। अब हमें राम-सुग्रीव के पास शीघ्र पहुंचकर सारी स्थिति का निवेदन करना होगा।".

अंगद-जामवन्त-हनुमान् के नायकत्व में राम-लक्ष्मण के निवास-स्थान प्रस्रवण पर्वत की ओर वानर-सेना की यात्रा प्रारम्भ हुई। मार्ग में "मधुवन" नाम का एक सुन्दर फल-फूल से भरा उद्यान आया जो सुग्रीव के मामा दधिमुख का था। हनुमान् की लंका यात्रा की सफलता खुशी में झूमते वानरगण अब अपने को संयमित न कर सके। वन में घुसकर स्वच्छन्द फल तोड़कर खाने लगे। दधिमुख और उद्यान के रक्षकों ने जब रोका तो इन क्रीडामस्त वानरों ने उन्हें मार-पीटकर बाहर निकाल दिया। अब मामला गम्भीर हो गया। दधिमुख रोता-पीटता सुग्रीव के पास पहुंचा और शिकायत की। सुग्रीव इससे यह तो समझ गये कि हनुमान् दक्षिण दिशा से सफल होकर ही वापस लौटे हैं, तभी वानरों ने इस प्रकार बाग में घुसकर ऊधम मचाया है। सुग्रीव ने राम-लक्ष्मण को भी इस शुभ समाचार से सूचित किया। दूसरी ओर दधिमुख की शिकायत को सुन उसका तत्काल निवारण करने का आश्वासन देते हुए कहा कि "उन्हें शीघ्र यहां मेरे पास भेज दो, मैं उन्हें ठीक कर दूंगा।" साथ ही, सुग्रीव ने अपने साथियों की इस उद्धतता के लिए दधिमुख से क्षमा-याचना की। दधिमुख ने जब वापस जा सुग्रीव का आदेश सुनाया तो वह वानर-सेना अपने सेनानायकों सहित द्रुतगति से प्रस्रवण पर्वत की ओर चल पड़ी।

श्री राम-लक्ष्मण की प्रसन्नता

वहां पहुंचते ही हनुमान् ने सुग्रीव और राम-लक्ष्मण का चरण-स्पर्श कर सारा वृत्तान्त, व्यौरे के साथ, सुनाया और सीता द्वारा दिया गया चूड़ामणि आभूषण उनके हाथों में रख दिया। राम-सीता के गहन दुःख का स्मरण करते हुए इस आभूषण को अपने हृदय से लगा अति विह्वल हो गये। सुग्रीव से बोले—"हे कपिराज! जानकी के पिता राजा जनक ने अपनी पुत्री के शुभ-

विवाह के अवसर पर यह आभूषण दिया था। पितृकुल से प्राप्त यह गहना उसे अति प्रिय था। वह सदा इसे अपने मस्तक पर धारण किये रहती थी......।"

सीता के सम्बन्ध में सब वृत्तान्त सुनकर राम को तृप्ति नहीं होती थी। वह चाहते थे कि हनुमान् सीता के सम्बन्ध में और भी अधिक बताए। भयानक राक्षस-राक्षसियों के बीच उस सुकुमारी पतिव्रता पर कितना संकट रोज ढाया जाता होगा—यह कल्पना कर राम बार-बार कम्पित हो उठते। हनुमान् से कहते कि "मुझे शीघ्र सीता के पास पहुंचा दो।" बुद्धिमान् हनुमान् ने राम को बारम्बार सान्त्वना दी और कहा कि अब लंका पर आक्रमण करने में विलम्ब नहीं होना चाहिए। राम ने हनुमान् के इस महान् कार्य से अत्यन्त प्रसन्न हो उसे अपनी छाती से लगा लिया और समस्त वानर सेना के सम्मुख उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

राम अभी तक खिन्न मन:स्थिति में थे। उन्हें चिन्ता थी कि सीता तक पहुंचने में कई दुर्गम घाटियां हैं। लंका तक पहुंचने के लिए बीच में विशाल सागर है और फिर रावण का अपना शौर्य और साथ ही उसकी बलवती सेना है, जिससे इन्द्र आदि देवता भी कांपते हैं। सुग्रीव के सम्मुख जब उन्होंने इस प्रकार अपनी निराशापूर्ण स्थिति रखी, तब सुग्रीव ने उन्हें धैर्य बँधाते हुए कहा—हे महाबाहो राम ! आप जैसे बुद्धिमान् और शक्तिसम्पन्न व्यक्ति को इस प्रकार शोकग्रस्त नहीं होना चाहिए। शोक तो शौर्यनाशक है। अब आप शोक त्याग कर शत्रु के साथ युद्ध करने का उपक्रम बनाइए। सीता का और शत्रु के गढ़लंका का सारा परिचय तो वीर-वर हनुमान् ले आया है। अब समस्त वानर-सेना विजययात्रा के लिए आतुर है। आपकी आज्ञा की ही प्रतीक्षा है। इसलिए हे राम ! अब आप अपनी निराशा को छोड़ पुरुषार्थ कीजिए और युद्ध-यात्रा के लिए उद्यम कीजिए।" हनुमान् ने भी इसी प्रकार के उत्साह-वर्धक शब्द राम के प्रति कहे।

वानर-सेना का युद्ध के लिए प्रस्थान

अब राम की मानसिक शिथिलता दूर हो गई। विजय यात्रा की तैयारी प्रारम्भ हो गयी। राम ने कहा—सेना में उन्हें ही ले जाया जाए, जो युद्ध करने के योग्य हैं। वृद्ध, निर्बल और अल्पवयस्कों को साथ नहीं ले जाना चाहिए। कुछ सैनिकों को किष्किन्धा नगरी की रक्षा के लिए छोड़ जाना चाहिए। हमें इस यात्रा में विशेष सतर्क रहना होगा, शत्रुगण फल-मूल-जल आदि में विष मिला सकते हैं। मार्ग के वन कन्दरा, कगार आदि को सावधानता से देख लेना होगा कि कहीं शत्रु लुक-छिपकर न बैठा हो।" सुग्रीव ने कहा, "आपके इस आदेश के अनुसार यथोचित व्यवस्था कर दी जाएगी। पूर्ण सावधानता के साथ सेना का प्रस्थान होगा। राम यह सुन बड़े उत्साहित हुए और गंभीर स्वर से वानर-यूथाधिपों से बोले—"वीरो ! लंका-विजय के लिए सन्नद्ध हो, आगे प्रस्थान करो।"

विजय दुन्दुभि और नगाड़ों से आकाश को गुंजाते और पृथ्वी के धूल-कणों से अन्तरिक्ष को अन्धकारपूर्ण करते हुए वानर सेना ने राम-लक्ष्मण के नेतृत्व में कूच कर दिया। आँधी-तूफान की तरह हरहराती हुई सेना आगे बढ़ रही थी। राम इस समय बड़े प्रसन्न थे। लक्ष्मण से बोले—भाई लक्ष्मण ! यह कैसी उत्साहप्रद घड़ी है। सम्पूर्ण सेना में जोश उमड़ रहा है। ये सब विजयसूचक शुभ-लक्षण हैं। सारी परिस्थिति हमारे अनुकूल है। हम अवश्य विजयी होंगे। सह्य और मलय पर्वतों को पार कर वानर सेना जिस समय समुद्र-तट पर पहुंची तब राम के आदेश से सेना ने वहीं पड़ाव डाला।

विभीषण का रावण को समझाना

उधर लंका में हनुमान् द्वारा अशोक-वाटिका के विध्वंस और नगर के भवनों के भस्मसात् होने तथा कई प्रमुख राक्षस-सेनापतियों के मारे जाने से रावण बहुत घबराया। उसने अपने मंत्रियों और

प्रमुख राक्षसों को मन्त्रणा के लिए बुलाया और कहा कि एक वानर ने सारे नगर में इतना उत्पात मचाया। अब हमें क्या करना चाहिए ? सब मंत्रियों ने रावण को परामर्श दिया कि हमें वानरों के साथ युद्ध कर उनका सर्वनाश करना चाहिए। हम सब मंत्रिगण इसके लिए तैयार हैं। केवल विभीषण ने इसका विरोध करते हुए पूर्ण विनम्रता और शिष्टाचार के साथ कहा कि आप सीता को सम्मानपूर्वक राम के पास भेज दें। इसी में आपका और राक्षस-जाति का भला है फिर, विभीषण रावण के अन्तःपुर में, अकेले में रावण को समझाने गया। उसने कहा—"आप मेरे बड़े भाई हैं और पूजा के योग्य हैं। आपके हित के लिए ही मैं कहता हूं कि सीता को वापस करने में आपका और हम सबका कल्याण है।" पर रावण विभीषण के इन वचनों से बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसे धिक्कारने लगा। वह अत्यन्त रोष के साथ बोला—"तुम मेरे सामने राम की बड़ाई करते हो। तुम महापापी हो। तुम लंका से निकल जाओ, इसी में मेरा कल्याण है। मैं सीता को कभी वापस नहीं करूँगा।" विभीषण ने फिर रावण के सभाभवन में जाकर—जहां सब मंत्रिगण और सेनापति एकत्र थे—रावण को समझाया कि राम के साथ अन्याय हुआ है और अन्याय की कभी जीत नहीं होती। पर सब दरबारी रावण की खुशामद में लगे हुए उसे युद्ध के लिए प्रेरित कर रहे थे। रावण ने विभीषण को दम्भी कहते हुए क्रोध भरे शब्दों में उच्च स्वर से कहा—"तुम ऊपर से मेरे शुभचिन्तक बनते हो, पर, वस्तुतः, मेरे शत्रु राम के साथ मिले हुए हो। ऐसा व्यक्ति जो प्रकट में अपने को हितैषी दिखाता हो पर, भीतर से, दुश्मन का ही भला सोचता हो, वह सांप से भी अधिक खतरनाक होता है और विभीषण तुम ऐसे ही हो।"

विभीषण भरी सभा में अपने प्रति रावण द्वारा कहे गये इन अपशब्दों को सुन बहुत खिन्न हुआ। उसने अपने चार साथियों सहित सभा भवन से बाहर जाते हुए कहा—"राजन् ! आप इस

प्रकार मुझे धिक्कारते और दुत्कारते हो तो मैं लंका छोड़ कर जा रहा हूं। आपके सिर पर काल नाच रहा है। आप इन चाटुकारों के बहकावे में पड़कर अपना विवेक खो चुके हैं, इसीलिए मेरी कल्याणकारी बातें भी आपको कड़वी लग रही हैं। मैं आपके इस अन्याय और अधर्म में साथ नहीं दे सकता।"

विभीषण का लंका त्याग : राम के शिविर में

विभीषण अपने विश्वासपात्र अनुचरों के साथ सभा भवन से निकल तत्काल आकाश-मार्ग से लंका पार कर, राम के शिविर में पहुंच गया। विभीषण ने वहां जाकर अपना परिचय देते हुए, रावण को दिये गये सीता के वापस करने के परामर्श, रावण द्वारा भरी सभा में धिक्कार और दुत्कार तथा अन्य कटु वचनों का उसके प्रति प्रयोग इत्यादि समस्त वर्णन कर कहा कि "मैं अपने चारों साथियों समेत श्री राम की शरण में आया हूं। मुझे उस महामान्या के चरणों में शीघ्र पहुंचा दो।" विभीषण के इस प्रकार आने से सारी वानर सेना में हलचल मच गयी। सुग्रीव तत्काल श्री राम के पास विभीषण के आने का समाचार पूरे ब्यौरे के साथ लेकर गया और अपनी शंका प्रकट करता हुआ बोला कि "राक्षस मायावी, कुटिल और धूर्त्त होते हैं। इन पर विश्वास नहीं करना चाहिए। यह हमारा भेद लेकर शत्रु के पास चला जाएगा। अगर रावण ने इसे दुत्कार कर निकाल दिया है, तब भी इसका विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि जब अपने विपत्तिग्रस्त भाई का सगा नहीं बना, वह भला हमारा विश्वसनीय कैसे हो सकता है! प्रायः सब वानर सेनापतियों ने इसी प्रकार के सन्देहपूर्ण विचार प्रकट किये। पर, राम ने सबकी शंकाओं का उत्तर एक ही वाक्य में दृढ़ और अविचल निश्चय के साथ दिया कि "जो मेरी शरण में आता है, मैं उसे अपना ही लेता हूं। विभीषण तो क्या, यदि स्वयं रावण भी मेरी शरण में आ जाए, तो मैं निर्भय होकर उसे अपना मान

लूंगा।" अब सुग्रीव कुछ न बोल सका। वह श्री राम के ऐसे उच्च और मानव मात्र के प्रति कल्याण और विश्वास योग्य वचन सुन मुग्ध हो गया। विभीषण को वह स्वयं राम के पास ले गया। विभीषण ने अपने और अपने साथियों को पूर्ण रूप से राम के चरणों में सौंप दिया। विभीषण ने रावण की समस्त सेना, सेनापति और सुसज्जित चतुरंगिणी सेना का वर्णन किया। राम ने विभीषण को पूर्ण आश्वासन देते हुए कहा—"तुम कोई चिन्ता न करो। मैं इन सबका नाश कर तुम्हें ही लंका का राजा बनाऊंगा।" राम ने तत्काल लक्ष्मण और सुग्रीव तथा अन्य वानर सेनापतियों के सम्मुख विभीषण का राज्याभिषेक कर दिया। विभीषण ने नम्रता से श्री राम के चरणों में नत-मस्तक होकर कहा—"भगवन्! मैं लंका-विजय में आपका प्राणपन से पूरा साथ दूंगा"

इसी समय रावण का गुप्तचर शार्दूल और दूत शुक वहां आये। पूर्णरूप से तैयार वानर सेना को देख उसकी सारी सूचना रावण को देने दोनों लंका वापस गये। सेना की तैयारी के समाचार से रावण व्याकुल हो गया और शुक को कहा कि वह सुग्रीव से मिले और उससे कहे "राम की पत्नी सीता के हरण के मामले में वह क्यों हस्तक्षेप करता है? उसे लड़ाई से क्या मतलब? वह अपनी किष्किन्धा सेना वापस ले जाए। राम से मैं स्वयं निपट लूंगा।" शुक ने लंका से वापस आ सुग्रीव को जब रावण का सन्देश सुनाया, तब वानर सेना ने पहले तो उसे खूब पीटा, फिर उसे जान से मारने लगे। श्री राम ने वानरों से कहा कि "दूत को नहीं मारा जाता।" शुक ने वापस लंका जाते हुए सुग्रीव से पूछा कि "आपकी ओर से रावण को क्या सन्देश दूं।" सुग्रीव ने कहा—"तुम रावण से कहना कि श्री राम के शत्रु होने के कारण तुम भी मेरे शत्रु हो, इसलिए मारे जाने योग्य हो।" रावण का दूत अत्यन्त निराश हो वापस लंका लौट गया।

समुद्र पर वानर-सेना द्वारा पुल

अब समुद्र को पार कर लंका पर आक्रमण करने की योजना श्री राम ने लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान्, विभीषण के साथ मिलकर बनाई। सबसे मुख्य काम तो समुद्र पर पुल बनाने का था। वानर सेना में नल इंजिनीयर था। उसने कहा कि "मैं इस समुद्र पर पुल बना दूंगा।" सुग्रीव के आदेश से समस्त वानर सेना पर्वतों से चट्टानों और वन में से वृक्षों को काट-काट कर समुद्र-तट पर ढोने लगी। कुछ समय बाद पुल तैयार हो गया। रावण को अपने गुप्तचरों द्वारा इस समस्त तैयारी की सूचना मिल गयी। वह बहुत घबरा गया और उसने छल-कपट से काम लेने का निश्चय किया। उसने अपने एक मायावी राक्षस को बुलाकर कहा—"मैं सीता के पास अशोक वाटिका जा रहा हूं। उसे अपनी रानी बनने के लिए फिर मिन्नत करूंगा। यदि वह नहीं मानेगी तो तुम मेरे गुप्त इशारे पर, राम की शक्ल का एक कटा हुआ और रक्त से लथ-पथ सिर ले आना। तब मैं सीता को कहूंगा कि राम तो युद्ध में मार दिया गया है। उसका कटा सिर यह तुम्हारे सामने है। अब उस मरे हुए राम का ध्यान छोड़कर तुम मेरे अन्तःपुर में आ जाओ।"

रावण का छल : राम का कटा सिर सीता के सम्मुख

इसी गुप्त छल-कपट-पूर्ण योजना के अनुसार रावण ने सारा नाटक रचा। जिस समय सीता के सम्मुख उसने बनावटी राम का कटा सिर उसके धनुष-बाण सहित उपस्थित किया तो सीता बेचारी बहुत घबरा गयी और उच्च स्वर से विलाप करने लगी। विभीषण की पत्नी सरमा ने सीता को आश्वासन देते हुए कहा कि "देवी ! तू दुःखी मत हो। राम को कोई नहीं मार सकता। रावण ने तुझे डराने के लिए यह छल-कपट किया था। अब श्री राम शीघ्र ही लंका पर आक्रमण करने वाले हैं।"

अंगद रावण की सभा में

राम सेना ने लंका पर हमला करने के लिए पुल पार कर लिया। रात को वहां सुवेल पर्वत पर सबने विश्राम किया। इस पर्वत की चोटी से सम्पूर्ण लंका दिखाई देती थी। उधर अपने राज-प्रासाद की सबसे ऊंची अट्टालिका पर चढ़ रावण ने राम के विशाल सैन्य-शिविर को देखा। इसे देख वह कुछ घबराया। उसे आश्चर्य हुआ कि राम ने जंगल में आकर इतनी महती सेना का संग्रह कैसे कर लिया? अब वह महायुद्ध की तैयारी करने लगा। उसने अपनी चतुरंगिणी सेना को लंका के चारों ओर सन्नद्ध कर दिया। अब लंका नगरी रणोन्मत्त राक्षसों की भारी संख्या से भरपूर थी। उधर, राम ने सुग्रीव को बुलाकर कहा—"युद्ध के नियमों के अनुसार आक्रमण से पहले शत्रु को एक चेतावनी देनी आवश्यक होती है। इसलिए तुम अंगद को मेरा दूत बनाकर लंका में रावण के पास भेजो। वह वहां हमारी सब तैयारी का पूरा विवरण सुना उसे कहे कि यदि वह अब भी मेरी पत्नी सीता को वापस कर आत्मसमर्पण कर दे तो यह युद्ध रुक सकता है। अन्यथा, उसका और उसके सब साथियों का सर्वनाश अनिवार्य है।" इस काम के लिए अंगद को चुना गया। वह तत्काल रावण के सभा-भवन में पहुंचा और राम का सन्देश सुनाया। रावण सुनते ही आग-बबूला हो गया और उसे तत्काल पकड़ने का आदेश जब उसने दिया, तब अंगद अपने लचकीले और बलिष्ठ शरीर के साथ राक्षसराज के सैनिकों को अपनी भुजाओं से धक्का दे और गिराकर छलांग मारता हुआ वहां से भाग गया। अब युद्ध के अतिरिक्त राम के लिए कोई मार्ग न रहा।

लंका पर आक्रमण

राम ने रण-घोषणा के साथ लंका पर धावा बोल दिया। रावण की चतुरंगिणी सेना भी अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित लंका के चारों

फाटकों से बाहर निकल आयी। गदा, तलवार, बन्दूक, बाण इत्यादि से दोनों ओर से भयंकर मार-काट होने लगी। वानर सेना शिलाखंड, वृक्ष इत्यादि पर्वत पर से शत्रुओं पर बरसाने लगी। रक्त की नदियां चारों ग्रोर बहने लगीं। हताहतों के ढेर लग गये। रात को भी युद्ध चलता रहा। महाप्रलय का दृश्य उपस्थित हो गया। रावण-पुत्र मायावी मेघनाद ने चेतना-नाशक ग्रौर विषासक्त बाणों की राम-लक्ष्मण पर ऐसी भयंकर वर्षा की कि दोनों भाई रणभूमि में मृतप्राय हो लड़खड़ाने लगे। राक्षस-सेना उन्हें मृतक समझ लंका में अपनी विजय का डंका पीटते रावण के पास गयी। इससे राक्षसराज की प्रसन्नता का कोई ठिकाना न रहा। उधर, वानर सेना में घोर शोक छा गया। सबने यही समझा कि राम-लक्ष्मण का जीवन समाप्त हो गया। सुग्रीव सहित समस्त वानर वीर दोनों मृतप्राय भाइयों को घेर कर बैठ गये ग्रौर हा-हाकार करने लगे। रावण ने सीता को कई राक्षसियों के साथ विमान पर बिठाकर राम-लक्ष्मण को मरा हुग्रा देखने के लिए भेजा। दोनों को मृत-सदृश देख सीता ग्रत्यन्त शोक-विह्वल हो गयी और उच्च स्वर से विलाप करने लगी। इन राक्षसियों में त्रिजटा भी थी। उसने सीता को धैर्य देते हुए कहा–"तुम दुःखी मत होओ। राम-लक्ष्मण मरे नहीं, जीवित हैं, केवल मूर्च्छित हैं।" इससे सीता को बड़ा ढाढस मिला।

लक्ष्मण का मूर्च्छित होना

ग्राहत होने पर भी कुछ समय बाद राम को चेतना ग्रायी। वहाँ पास ही लक्ष्मण को रक्त से लथपथ और अचेत देख राम तीव्र रूप से विलाप करने लगे। रोते हुए बोले—ग्रब लक्ष्मण के विना मेरा जीना और सीता की प्राप्ति के लिए युद्ध करना व्यर्थ है। संसार में खोजने पर सीता जैसी नारी तो मिल सकती है पर लक्ष्मण सदृश भाई ग्रौर शूरवीर कहां मिलेगा!" अत्यन्त शोक-संतप्त हो

राम बोले—"भाई लक्ष्मण ! जैसे मेरे वनवास में तुमने मेरा साथ दिया, वैसे ही अब परलोक-यात्रा में मैं तुम्हारे पीछे-पीछे आता हूं।" इस प्रकार वानर सेना में जब चारों ओर शोक छाया हुआ था विनता-पुत्र गरुड़ वैद्य वहाँ आ गये और उन्होंने लक्ष्मण के घावों का अपने हाथों से उपचार कर उसे स्वस्थ कर दिया। राम ने वैद्य के प्रति अपनी अत्यन्त कृतज्ञता प्रकट करते हुए उनका परिचय पूछा। गरुड़ वैद्य ने कहा—"मैं स्वेच्छा से ही यहां सेवा की भावना से आया हूं। मैं आपका मित्र ही हूं और कष्ट में पड़े हुओं की सहायता के लिए विचरता रहता हूं। राक्षसों के साथ आपको सावधानता से युद्ध करना चाहिए क्योंकि ये छल-कपट में बड़े दक्ष होते हैं।"

रावण के महारथियों का अन्त

अब युद्ध भयंकर रूप से चलने लगा। दूसरे दिन राक्षसों के सेनापति धूम्राक्ष, तीसरे दिन वज्रदंष्ट्र, चौथे दिन अकम्पन, पांचवे दिन प्रहस्त—इस प्रकार रावण के प्रमुख महारथियों को उनकी चतुरंगिणी सेनाओं सहित धराशायी कर दिया। इससे रावण अत्यन्त विक्षुब्ध और चिन्तानिमग्न हो गया। अब छठे दिन रावण स्वयं अपने वीरवर पुत्र मेघनाद के साथ रणभूमि में उतरा। इन दोनों को देख वानर सेना में एक प्रकार गहरा आतंक छा गया। राम बोल उठे—"राक्षसराज रावण सचमुच, शरीर की दृष्टि से, महातेजस्वी है। ऐसा प्रभावशाली व्यक्ति मैंने पहले कभी नहीं देखा। अच्छा हुआ आज मेरे सामने यह आ गया। मेरे हृदय की ज्वाला आज ही शान्त हो जाएगी।"

राम द्वारा रावण भयंकर घायल

राम-लक्ष्मण धनुष-बाण लेकर रावण के सामने आ गये। राम-लक्ष्मण के साथ सुग्रीव, हनुमान्, नील इत्यादि वानर यूथपति भी रावण पर आक्रमण करने लगे। पर, रावण ने अपनी वीरता से

वानर सेना में महाप्रलय सदृश दृश्य उपस्थित कर दिया। अब लक्ष्मण सामने आया। रावण ने क्रुद्ध हो उस पर ऐसा घातक शस्त्र छोड़ा कि वह अचेत हो गया। हनुमान् उसे वहां से तुरन्त उसी शिविर में ले गया। लक्ष्मण की यह अवस्था देख राम ने अत्यन्त क्रोध के साथ रावण पर बाणों की बौछार कर दी। रावण के रथ की ध्वजा और उसके सिर का मुकुट और हाथ में पकड़ा धनुष सब कट गये। राम के बाणों से रावण का शरीर जर्जरित और शिथिल हो गया था। राम ने रावण की इस स्थिति को देख उससे युद्ध करना उचित नहीं समझा। सायंकाल का समय भी हो गया। राम ने कहा––"राक्षसराज ! धर्मानुसार सूर्यास्त के बाद युद्ध नहीं करना चाहिए। तेरी ऐसी दयनीय स्थिति को देख मैं तुझे अब मारना नहीं चाहता। तू घर जाकर विश्राम कर। कल फिर आना। हम दोनों का प्राणान्तक संग्राम होगा।"

कुम्भकर्ण युद्धक्षेत्र में : राम द्वारा यमलोक को

राम के वचनों से अत्यन्त लज्जित हो रावण वापस लंका आ गया। उसने जाते ही अपने छोटे भाई कुम्भकर्ण को बुला भेजा। वह इन्द्रियों के भोगविलास और काम-आसक्त हो राज्य-कार्यों से सदा विमुख रहता था, इसलिए उसे छः-छः मास तक सोने वाला कहा जाता है। रावण के मंत्री बड़ी कठिनता से उसे होश में ला सके। जब वह रावण के पास आया तब उसे युद्ध का सारा वृत्तान्त सुनाया। कुम्भकर्ण ने कहा—"भैया ! मैंने तुम से पहले ही कहा था कि "परस्त्री-हरण और राम से वैर करना उचित नहीं है। इसका फल अत्यन्त घातक होगा। पर आपने नहीं माना और उसका फल आज हम सबको भोगना पड़ रहा है।" रावण ने अट्टहास करते हुए कहा—"अब तुम्हारे उपदेश की जरूरत नहीं है। तुम्हारे समान मेरा कोई शुभचिन्तक नहीं है। अब तुम शत्रु को मारने के लिए तत्काल युद्धभूमि में जाओ।" कुम्भकर्ण ने पहले तो

कहा कि—मैं अकेले ही शत्रु को संहार करने के लिए पर्याप्त हूं पर रावण के बहुत आग्रह पर उसने अपने साथ राक्षस सेना ले ली। विशालकाय और मदमस्त कुम्भकर्ण को देख पहले तो वानर भयभीत हो इधर-उधर भागने लगे पर अंगद द्वारा कड़ी भर्त्सना किये जानें पर वानर-सेना कुम्भकर्ण के साथ भिड़ गयी। यद्यपि उसका शरीर वानर सेना की बाण वर्षा से घायल हो गया, पर वह इससे तनिक भी घबराया नहीं। कुम्भकर्ण जब फिर डींग हांकता हुआ सामने आया, तब लक्ष्मण ने उस पर बाण-वर्षा प्रारम्भ कर दी। इसी समय राम भी आ गये। कुम्भकर्ण मुद्गर घुमा-घुमाकर राम के बाणों को रोकने लगा। पर राम के प्रबल अस्त्रों के सामने कुम्भकर्ण अधिक देर तक न टिक सका। उसकी दोनों भुजाएं पहले कट गयीं, फिर राम के ऐन्द्रास्त्र नें कुम्भकर्ण का शिरच्छेद कर दिया। कुम्भकर्ण की मृत्यु से राम की वानर-सेना में अपार हर्ष की लहर दौड़ गयी।

मेघनाद द्वारा लक्ष्मण मूर्च्छित : हिमालय से औषधि

कुम्भकण को मृत्यु से रावण बड़ा विचलित हो गया। अब वह समझ गया कि उसका भी अन्तकाल समीप है। पर रावण-पुत्र मेघनाद ने उसे बड़ा ढाढस बँधाया और कहा कि "जब तक मैं जीवित हूं, तब तक आपको तनिक भी घबराना नहीं चाहिए। मैं राम और लक्ष्मण दोनों को यमलोक में शीघ्र पहुंचा देनें की प्रतिज्ञा करता हूं।" मेघनाद ने आते ही वानर सेना का प्रबल विध्वंस करना प्रारम्भ कर दिया। उसकी भयंकर बाण-वृष्टि से जाम्बवान् नील, अंगद आदि वानर सेनापति घायल हो गये। सूर्य-किरणों के सदृश प्रदीप्त बाणों की वृष्टि से राम-लक्ष्मण भी मूर्च्छित हो गये। इस प्रकार मेघनाद बड़े अभिमान के साथ रावण के पास जाकर अपनी विजय की बड़ाई हांकनें लगा। इधर, राम-लक्ष्मण और अन्य वानर यूथपतियों वे होश और घायल हो जानें से वानर-सेना

में घनघोर निराशा छा गयी। इस समय विभीषण ने धय प्रदान करते हुए, जामवन्त द्वारा दिये गये पूरे ब्यौरे के साथ हनुमान् को हिमालय पर्वत की कैलाश चोटी पर मृत-संजीवनी, (मृत सदृश मूर्च्छित को जिलाने वाली) विशस्यकरणी (घावों को भर देने वाली), सावर्ण्य करणी (घावों का रंग बदलकर पूर्ववत् कर देने वाली) और सन्धान करणी (हड्डी आदि जोड़ने वाली)—इन चारों प्रकार की जड़ी-बूटियों को लाने के लिए भेजा। हनुमान् तत्काल हिमालय की ओर गये। श्रौषधियों को ठीक प्रकार पहचान न सकने के कारण वह समूचे शिला-खंड को उठा लाये। इन औषधियों के प्रयोग से राम-लक्ष्मण तथा अन्य वानर वीर पूर्ण स्वस्थ हो गये।

मेघनाद का छल : सीता का कटा सिर राम के सम्मुख

अगले दिन राम-लक्ष्मण के साथ मेघनाद का जब युद्ध प्रारम्भ हुआ, तब राक्षस-पुत्र ने इन दोनों के हाथों अपनी मृत्यु अवश्यम्भावी समझ अपने को लंका में छिपा लिया। कुछ देर बाद यह सोचकर कि मेरे रणभूमि से अनुपस्थित रहने से राक्षस सेना मारी जाएगी, मेघनाद एक बनावटी सीता को रथ में बिठा, उसका वध करने के लिए वानर-सेना के सामने खड़ा हो गया। जब हनुमान् और वानर-सेना श्रायुधों सहित मेघनाद पर झपटी, तब उसने तत्काल इस बनावटी सीता का सिर काट भूमि पर फेंक दिया। हनुमान् ने जब यह हृदय-वेधक समाचार राम को सुनाया तब राम एकदम मूर्च्छित हो गये। लक्ष्मण तत्काल राम को सात्वना देने वहां पहुंचे ही थे कि विभीषण ने इस रहस्य का उद्घाटन करते हुए कहा कि "वह तो बनावटी सीता थी जिसका वध उसने किया है और वानर-सेना से अपना बचाव करने के लिए वह अब निकुम्भिला देवी के मन्दिर में हवन करने जा बैठा है। उस दुष्ट को यज्ञ करते हुए ही मारना आवश्यक है। इसलिए आप लक्ष्मण के नेतृत्व में

वानर-सेना को वहां इस राक्षस पर आक्रमण करने के लिए अभी भेज दें।" राम ने विभीषण के इस वचन के अनुसार उसी समय कवच धारण किये, और शस्त्रों से सुसज्जित लक्ष्मण को वहां भेज दिया।

मेघनाद का अन्त

अब मेघनाद भयंकर गर्जन करता हुआ यज्ञस्थल छोड़ रणभूमि में आ गया और लक्ष्मण के साथ युद्ध करने लगा। विभिन्न प्रकार के संहार के अस्त्र-शस्त्रों से दोनों में भयावह युद्ध होने लगा। लक्ष्मण ने मेघनाद के रथ, घोड़े और सारथी—तीनों को जब मार दिया तब मेघनाद क्रोध से आग-बबूला हो रथ से कूद भूमि पर आकर लक्ष्मण से युद्ध करने लगा। मेघनाद ने लक्ष्मण पर पहले "शक्ति" और फिर आग्नेय अस्त्र छोड़ा, पर लक्ष्मण ने इन दोनों भयंकर अस्त्रों को अपने कभी व्यर्थ न जाने वाले ऐन्द्रास्त्र से व्यर्थ कर उसी अस्त्र द्वारा मेघनाद का वध कर डाला। मेघनाद के वध से राक्षस सेना तो तत्काल वहां से भाग खड़ी हुई, और दूसरी ओर, वानर-सेना ने आकाश-भेदी जय-जयकार कर सब दिशाओं को गुंजा दिया। मेघनाद से युद्ध करते हुए लक्ष्मण अत्यन्त घायल हो गये थे। इसलिए राम ने सुषेण वैद्य से लक्ष्मण का उपचार करने को कहा। सुषेण वैद्य ने ऐसा नस्य दिया जिसके सूंघते ही घावों में घुसी बाणों की नोकें स्वयं बाहर निकल गयीं।

राम-रावण का भयावह युद्ध

रावण ने जब अपने वीर पुत्र मेघनाद की मृत्यु का समाचार सुना तो पहले वह मूर्च्छित हो गया, बाद में प्रबल क्रोध के आवेश में आ सीता को मारने के लिए हाथ में तलवार ले अशोक वाटिका पहुंच गया। इसी समय रावण के एक बुद्धिमान् शुद्ध चरित्र के मंत्री सुपार्श्व ने रावण को समझाते हुए कहा कि "स्त्री-वध महा पाप है। आप ऐसा क्षत्रिय-धर्म के विरुद्ध नीच काम क्यों करते हैं? आप अपना क्रोध राम से युद्ध कर उस पर निकालिए।" रावण ने अपने

मंत्री की बात मान अब राम से युद्ध करने के लिए रणभूमि की ओर प्रस्थान किया। वानर-सेना के यूथपति सुग्रीव और अंगद ने राक्षस सेनापति विसपाक्ष, सहोदर महापार्श्व का जब वध कर दिया, तब रावण के लिए राम के साथ युद्ध करने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग न रहा। रावण अत्यन्त क्रुद्ध हो राम पर विकराल बाणों की वर्षा करने लगा। इसी बीच लक्ष्मण ने रावण के रथ की ध्वजा काट दी, और उसके सारथी का वध कर दिया। विभीषण ने रावण के घोड़ों को मार दिया। रावण ने अत्यन्त क्रुद्ध हो लक्ष्मण पर वज्र सदृश शक्ति का प्रहार किया। इसकी चोट लक्ष्मण के हृदय पर सीधी आकर लगी जिससे वे मूर्च्छित हो रणभूमि में ही गिर पड़े। राम ने युगान्तकालीन अग्नि की भांति क्रुद्ध हो रावण पर भयंकर ऐसे सात बाण मारे जिससे भयभीत हो रावण युद्धभूमि से भाग लंका चला गया।

अब लक्ष्मण को मृत्यु सदृश भूमि पर गिरा देख राम हा-हाकार करने लगे। राम ने विलाप करते हुए कहा कि सीता सदृश स्त्री और सुग्रीव जैसे मित्र तो सब स्थानों पर मिल सकते हैं पर लक्ष्मण सदृश सहोदर भाई कहीं नहीं मिल सकता। राम की प्रेरणा से सुषेणा वैद्य ने हनुमान् को हिमालय पर्वत पर पुनः औषधि लेने भेजा। हनुमान् औषधि को ठीक प्रकार पहचान न सके। इसलिए शिला खंड ही उठा ले आये। सुषेण वैद्य द्वारा दी गयी ओषधि के सूंघने से तत्काल लक्ष्मण को चेतना आ गयी। राम अत्यन्त प्रसन्न हुए और रावण के साथ युद्ध की तैयारी करने लगे।

रावण का अन्त

अगले दिन दोनों महावीरों में युद्ध प्रारम्भ हो गया। राम की सहायता करने के लिए इन्द्र ने अपने सारथी मातलि के हाथ एक अद्भुत रथ भेजा। राम उसी रथ पर आरूढ़ हो रावण से युद्ध करने लगे। दोनों के रथ एक दूसरे के सामने आ खड़े हुए। तुमुल

युद्ध प्रारम्भ हो गया। राम ने एक सर्पाकार बाण रावण पर छोड़ा जिससे रावण का सिर कटकर भूमि पर गिर पड़ा। उस राक्षसराज को मरा देख वानर सेना हर्ष में मस्त हो उछलने-कूदने लगी।

रावण के मर जाने से विभीषण विलाप करने लगे। रावण के अन्तःपुर में शोक से पीड़ित राक्षसियां हा-हाकार करन लगीं। पटरानी मन्दोदरी ने दुःखी हो बहुत विलाप किया। राम की विशेष प्रेरणा से विभीषण ने रावण का अन्त्येष्टि संस्कार किया। अब विधिवत् विभीषण का राज्याभिषेक कर उसे लंका के सिंहासन पर राम ने बैठा दिया।

राम के आदेश से हनुमान् सीता के पास

राम की प्रेरणा से हनुमान् सीता के पास गये और उसे विजय के सारे समाचार सुनाये। पर सीता हर्षातिरेक के कारण कुछ न बोल सकी। हनुमान् ने सीता के प्रति विनम्रता प्रकट करते हुए पूछा कि—"राम के प्रति कोई सन्देश हो तो बताइए। मैं उनकी सेवा में निवेदन कर दूंगा।" सीता ने इतना ही कहा—"मेरे लिए तो अब एक-एक पल भारी हो रहा है। मैं तो अब इसी क्षण आर्यपुत्र के दर्शन करना चाहती हूं।" राम सीता का यह सन्देश सुन अत्यन्त प्रसन्न हुए। राम स्वयं लंका में सीता के पास नहीं गये क्योंकि विभीषण ही वहाँ का राजा था। इसलिये उन्होंने विभीषण से कहा—मित्रवर! सीता को सुन्दर वेश में "यहां लाने की शीघ्र व्यवस्था करो।"

सीता अशोक वाटिका से राम के सम्मुख

विभीषण तुरन्त राजभवन गया। वहाँ से अन्तःपुर की महिलाओं और विविध प्रकार के आभूषण वस्त्र लेकर अशोक वाटिका पहुंचा। सीता का अभिवादन कर राम का सन्देश उससे कहा। सीता ने तत्काल स्नान कर, वस्त्र-आभूषण धारण किये। सुन्दर

पालकी में बैठा सीता को विभीषण अंगरक्षकों सहित राम के पास ले आये। विभीषण ने सीता के आगमन की सूचना राम को जब दी, तब उन्होंने कहा—"उसे तत्काल मेरे पास ले आओ।" सीता लज्जा के कारण सकुचाती, सिकुड़ती राम के पास पहुंची और विस्मय हर्ष और स्नेह से पविदेव को सिर झुकाये निहारने लगी। उस समय राम ने कहा—हे सीते ! देखो, अपना अपमान दूर करने के लिए मनुष्य को जो कुछ करना उचित है, वह सब मैंने रावण को मार कर किया है। राक्षस राज को मार कर मैंने अपने चरित्र की रक्षा की है और अपने तथा अपने विख्यात वंश के अपयश को धो डाला है। हे सीते ! राक्षस परिवार में इतने दिन रहकर मुझे तुम्हारे चरित्र में सन्देह उत्पन्न हो गया है। ये दशों दिशाएं तुम्हारे लिए खुली पड़ी हैं। तुम अपनी इच्छा से जिधर चाहो, जा सकती हो। रावण की गोद में बैठने के कारण तुम भ्रष्ट हो गई हो। मैं भला तुम्हें किस प्रकार ग्रहण कर सकता हूं।"

राम के सीता के प्रति कठोर वचन : सीता की अग्नि-परीक्षा

श्री राम के वचन सुन सीता अत्यन्त व्यथित हुई। अश्रुपूर्ण नेत्रों और मुख को पोंछती हुई बोली—"हे वीर ! तुम ऐसी अनुचित, कर्ण कटु और रूखी बातें मुझ से क्यों कह रहे हो, जैसे गंवार मनुष्य, अपनी गंवार स्त्री से करता है। हे महाबाहो ! आपने मुझे जैसा समझा है मैं वैसी नहीं हूं। मैं अपने पतिव्रत धर्म की शपथ खाकर कहती हूं, मेरे ऊपर विश्वास करो, मेरे चरित्र के सम्बन्ध में अपने मन के सन्देहों को दूर कर दो। रावण ने मेरे शरीर का स्पर्श अवश्य किया था जब उसने मुझे पकड़ा था पर उस समय मैं सर्वथा विवश थी इतने दिन तक साथ रहने पर यदि आप मेरे भावों को नहीं जान पाये तो मैं आपके लिए सदा मरी हुई ही हूं।" इतना

कह सीता ने रोते और आंसू बहाते हुए लक्ष्मण को सम्बोधित करते हुए कहा—"इस मिथ्या अपवाद से पीड़ित हो अब मैं जीना नहीं चाहती। तुम मेरे लिए चिता तैयार कर दो, इस घातक रोग की एकमात्र औषध यही है।" लक्ष्मण ने राम की ओर देखा, उनकी आज्ञा लेने के लिए। उनकी मुखाकृति से लक्ष्मण समझ गये कि राम भी इससे सहमत हैं, तब लक्ष्मण ने चिता तैयार कर दी। सीता ने धीरे-धीरे श्रीराम की प्रदक्षिणा की और समीप खड़े सब विद्वानों और वयोवृद्धों को नतमस्तक हो नमस्कार करने के पश्चात् सीता ने कहा—

सीता प्रज्वलित चिता में कूदने को उद्यत

"जिस प्रकार मेरा मन श्रीराम की ओर से कभी चलायमान नहीं हुआ, उसी प्रकार सब लोगों के साक्षी अग्निदेव सब प्रकार मेरी रक्षा करें। मन, वचन और कर्म से यदि मैं सर्वधर्म से श्रीराम को छोड़ अन्य किसी को पतिरूप में न जानती होऊं तो अग्निदेव मेरी रक्षा करें।"

राम का सीता के प्रति विश्वास प्रकट करना

सीता को अब अग्नि में कूदने के लिए तत्पर देख वहाँ उपस्थित सब आबाल वृद्ध भय ग्रस्त हो गये। अग्नि में इस प्रकार कूदने के लिए सीता को उद्यत देख राम का मन प्रसन्न हो गया और उसकी शुद्धता पर पूर्णविश्वास हो उन्होंने सीता को ऐसा करने से रोक दिया। वहां उपस्थित जनसमूह को सम्बोधित करते हुए राम बोले—"निश्चय ही सीता तीनों लोकों में शुद्ध एवं पवित्र है। यदि मैं सीता की शुद्धता की परीक्षा न करता तो सब लोग यही कहते कि महाराज दशरथ का पुत्र राम बड़ा कामी और मूर्ख है। मैं सीता को वैसे ही नहीं त्याग सकता जैसे सूर्य की रश्मियां सूर्य का त्याग कभी नहीं कर सकतीं।"

राम की पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या से वापसी :

लंका का राज्य विभीषण को

रावण वध, विभीषण का राज्यभिषेक और सीता की अग्नि परीक्षा के पश्चात् श्रीराम-लक्ष्मण और सीता ने रात्रि वहीं व्यतीत की और अगले दिल प्रातःकाल वापस अयोध्या जाने के लिए तैयार हुए। विभीषण ने कुछ दिन अधिक ठहरने का जब आग्रह किया तब राम ने कहा कि "धर्मात्मा भरत मेरे लिए अयोध्या में कष्ट पा रहा है। उसे देखे बिना मुझे स्नान, वस्त्र, अलंकार—जो तुम मुझे देना चाहते हो—कुछ अच्छा नहीं लगता। अब तुम मेरी तुरन्त अयोध्या वापसी की कोई व्यवस्था करो।" विभीषण तत्काल लंका से पुष्पक विमान ले आया और बोला—"इस विमान से आप बिना किसी कष्ट के आज ही अयोध्या पहुंच जायेंगे।" राम ने कहा—"तुम्हारे यहाँ अधिक दिन ठहरने के आग्रह को मैं इस समय स्वीकार नहीं कर सका, इसके लिए तुम दुःखी व क्रुद्ध मत होना। तुमने जो मेरा और सबका सत्कार किया है, उसके लिए अत्यन्त कृतज्ञ हूं।" राम की प्रेरणा पर विभीषण ने समस्त वानर सेना और उनके यूथपतियों को, उनकी पद-मर्यादा के अनुसार, प्रचुर करने, धन आदि से पुरस्कृत किया। राम ने, प्रस्थान करने से पूर्व सुग्रीव, हनुमान् और समस्त वानर सेना तथा विभीषण का उनकी मित्रता और सहायता के लिए भूरि-भूरि धन्यवाद किया। विभीषण से राम ने कहा—"आप मेरे द्वारा प्रदत्त लंका राज्य में सुखपूर्वक रहें। अब इन्द्र सहित किसी बलशाली की यह शक्ति नहीं कि आपको टेढ़ी दृष्टि से देख सकें।

विभीषण, सुग्रीव, हनुमान् इत्यादि भी राम के साथ

इस प्रकार जब श्री राम-लक्ष्मण विमान पर आरूढ़ होने लगे, तब विभीषण ने हाथ जोड़कर श्री राम से कहा—"हम सब की

इच्छा भी आपके साथ अयोध्या चलने की है। वहां आपका राज्याभिषेक देख तथा माता कौशल्या को प्रणाम कर हम सब तुरन्त वापस लौट आएंगे।" राम विभीषण और वानर मित्रों की यह प्रार्थना अस्वीकार न कर सके। अपने साथियों और मंत्रियों सहित सुग्रीव और विभीषण—सब बड़े हर्षित हो पुष्पक विमान में जा बैठे। मार्ग में राम सीता को समुद्र का पुल और युद्ध के समस्त घटनास्थल दिखाते हुए जब जा रहे थे तब सीता ने कहा कि "मेरी इच्छा है कि आपके परम मित्र सुग्रीव तथा अन्य प्रमुख वानरों की स्त्रियों को मिलती चलूं और उन्हें साथ लेकर अयोध्या में प्रवेश करूं।" सीता की इस इच्छा को राम ने पूरा करना आवश्यक समझा और किष्किंधा नगरी में पुष्पक विमान ठहरा कर सुग्रीव पत्नी तारा तथा अन्य वानरों के महिला वर्ग को उसमें बैठा अयोध्या की यात्रा प्रारम्भ कर दी। मार्ग में वन, पर्वत, आश्रम इत्यादि का पूरा विवरण सीता को सुनाते गये। मार्ग में जब भरद्वाज आश्रम आया तब १४ वर्ष का वनवास पूरा कर राम-सीता-लक्ष्मण और समस्त यात्री वहां उतरे। राम ने ऋषि चरणों में प्रणाम करने के पश्चात् मुनिवर से अयोध्या की प्रजा और अपनी माताओं तथा भाइयों के सम्बन्ध में कुशल क्षेम के समाचार पूछे। मुनि भरद्वाज ने उनसे आज रात आश्रम में ही विश्राम करने और उनका आतिथ्य स्वीकार करने का अनुरोध किया। श्री राम ने मुनि आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए हनुमान् से कहा कि वह शीघ्र भरत के पास जाएं और उनसे हम सबका कुशलक्षेम का तथा विभीषण और सुग्रीव के भी साथ में आने का समाचार सुनाकर यह देखें कि भरत की भावना मेरे प्रति कैसी है। "हे हनुमान्! तुम यह सारा भेद लेकर शीघ्र यहां लौट आओ।" हनुमान् तत्काल नन्दि ग्राम में भरत से मिले और देखा कि भरत अत्यन्त कृश हो गये हैं, सिंहासन पर राम की चरण-पादुकाएं रखकर पृथ्वी का शासन करते हैं। हनुमान्

से सारे समाचार सुन भरत गद्गद् हो गये और आनन्द अश्रु-प्रवाह के साथ उन्होंने राम के शीघ्रातिशीघ्र आगमन के लिए हनुमान् से प्रबल अनुरोध किया।

राम-भरत मिलाप १४ वर्ष के बाद

श्री राम के आगमन का समाचार तत्काल सारी अयोध्या नगरी में फैल गया। शत्रुघ्न ने भरत के आदेश के अनुसार समस्त नगरी को खूब समलंकृत कर दिया। भरत अपने सिर पर श्री राम की चरण-पादुकाएं रख राम का स्वागत करने के लिए सबसे आगे थे। भरत ने सुग्रीव और विभीषण का हार्दिक अभिनन्दन किया। सुग्रीव को भरत ने अपना पांचवां भाई कहा। श्री राम, लक्ष्मण, सीता ने सब माताओं, अन्य वृद्ध महिलाओं और वशिष्ठ आदि गुरुजनों को प्रणाम किया। भरत ने दोनों पादुकाएं राम के चरण में अर्पित कर दीं। भरत ने कहा "हे राम! आप अपने कोश धान्यशाला, गृहसेना इत्यादि का निरीक्षण कर लें। आपके प्रताप से इन सब में वृद्धि हुई है। नन्दि ग्राम से राम भरत के नेतृत्व में समस्त दल अयोध्या पहुंचा। श्री राम-लक्ष्मण का क्षौर कर्म किया गया और स्नान कराया गया। फिर उन्हें उत्तम और देदीप्यमान अलंकारों से सुशोभित कर रथ पर बैठा नगर में से उनकी शोभा यात्रा निकाली गयी। सुग्रीव, विभीषण आदि अतिथियों को यथायोग्य उत्तम भवन में ठहराया गया। राज्याभिषेक के बाद ये अतिथि वापस चले गये।.....

राम का राज्याभिषेक

इसके बाद, उत्तम विद्वानों और ऋषिवरों द्वारा विधिवत् यज्ञ करने के पश्चात् राम का अभिषेक किया गया। गुरु वशिष्ठ ने राम के सिर पर स्वर्ण-जटित मुकुट पहनाया। श्री राम ने सुग्रीव, अंगद, हनुमान् आदि को स्वर्ण, रत्न, आभूषण आदि दिये। विद्वान् ब्राह्मणों को प्रचुर आभूषण और वस्त्र दिये। सीता ने बड़ी प्रसन्नता

के साथ अपने गले का एक स्वर्ण हार हनुमान् को भेंट किया। श्री राम ने हनुमान् का विशेष रूप से गुण-गान करते हुए उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की।

राम राज्य का रूप

राम ने अपने भाइयों सहित लगभग ३० वर्ष तक राज्य किया। रामराज्य में सर्वत्र सुख, समृद्धि, उन्नति और आनन्द का राज्य था। राज्य में कोई विधवा, डाकू, लुटेरा नहीं था, अकाल मृत्यु नहीं थी। सब नगरी और आश्रम वाले अपने-अपने कर्त्तव्य का भली-भांति पालन करते थे। धन्य-धान्य, ऐश्वर्य, वनस्पति इत्यादि का प्राचुर्य था। कोई लोभी, लालची, अशिक्षित, रोगी और मिथ्याभावी नहीं था। सारी प्रजा धर्म परायण थी। ५१ वर्ष की आयु में श्री राम राजगद्दी पर बैठे। लगभग ३० वर्ष राज्य किया। ८१ वर्ष की आयु में उन्होंने कुल परम्परा के अनुसार, वानप्रस्थ आश्रम ले लिया।

भारत में 'राम राज्य' स्थापना और
आदर्शों के प्रचार–प्रसार के लिए
'दयानन्द–संस्थान'
के सदस्य बनिए।

व्यङ्ग —चतुरसेन गुप्त

चुनाव के अवसर पर नेताओं के भाषण

चुनाव में हमें भी एक नेता के साथ घूमना पड़ा। उनसे चुनाव-सभाओं में जो कुछ सुना वह आपकी सेवा में उपस्थित है। ---लेखक

चुनाव सभा में—

भाइयो ! मुझे अपनी कीमती वोट दो, अपने जेब से नोट दो, मैं तुम्हारा सेवक हूँ, तुम्हारी सेवा के लिए ही मैं मेम्बर बनना चाहता हूं। आप जानते हैं—मेरा तो अपना कोई स्वार्थ नहीं है, आपकी तकलीफें सरकार के सामने रखूंगा, आपके हर वक्त काम में आऊँगा। बस, मुझे आज इतना ही निवेदन करना है।

कृषकों की सभा में–

मेरे प्यारे कृषक भाइयो ! तुम दिन-रात कड़कती धूप में, बरसात में और भंयकर शीत में हल चला कर अन्न पैदा करते हो। तुम्हारा माल सस्ता खरीद लिया जाता है। तुम्हें पूरा लाभ नहीं मिलता। तुम्हारी मेहनत की कमाई से ये व्यापारी अपने महल खड़े कर लेते हैं। आप मुझे वोट दें, मैं तुम्हारे लिए व्यापारी से लड़ूंगा और सरकार से लड़ूँगा।

कृषक-मजदूरों की सभा में–

मेरे गरीब भाइयो ! पहले जमींदार तुम्हारा खून चूसता था

अब यह भूमिधर तुम्हें तङ्ग करते हैं। तुम भूमिधर का हल चलाते हो, बड़ी सख्त मेहनत करते हो, फिर भी यह नामधारी कृषक तुम्हें पूरी मजदूरी नहीं देते। तुम मजदूरी के बदले अनाज लेते हो तो महंगा देते हैं, उधार लो तो मोटा व्याज देना पड़ता है। गरज यह है कि मैं आपकी तकलीफों को खूब समझता हूं। मुझे आप सब भाई-बहिन वोट दें। मैं तुम्हारी गरीबी के लिए लड़ूंगा। आप जानते हैं—मैं तो हमेशा से कहता आया हूं कि भूमि के असली मालिक तो तुम्हीं हो।

व्यापारियों की सभा में–

मेरे प्यारे बन्धुओ ! मैं आपके सामने सही तस्वीर रख रहा हूँ—ध्यान दें। आज तुम्हारे खिलाफ सभी दलों ने नारा बुलन्द किया हुआ है। इन्होंने तुम्हारे विरुद्ध किसानों में जहर भर दिया है। मजदूरों, मुनीमों, दलालों, खरीदारों और पल्लेदारों को गरज यह कि सबको तुम्हारे खिलाफ भड़का दिया है।

उधर सरकार की नजर अच्छी नहीं, तुम्हारी जान को हजार मुसीबतें पैदा कर दीं, कहीं सेलटैक्स, कहीं उत्पादन टैक्स, कहीं इन्कमटैक्स इन सब के लिए इन्स्पैक्टरों की खुशामद, अदालतों में चक्कर, नौकरों के रजिस्टर, फिर सरकारी अफसर तुम्हारा कचूमर निकालनें को तत्पर और अन्त में मौत टैक्स का भी चक्कर।

इन सब परेशानियों का एक ही इलाज है—मेरी पार्टी को वोट। आप मेरी हर तरह से मदद करें। अपनी-अपनी मंडियों से मुझे थैली भेंट करें। जिससे मेरी पार्टी मजबूत हो। तब ही आपके दुःख-दर्दों को दूर कर सकूंगा।

मिल मालिकों की सभा में–

साहेबान ! पता नहीं आपने कैसे-कैसे, जैसे-तैसे मिल खड़े किये। लाखों गरीबों को काम दिया, किसानों को मालदार किया। सरकार के खजाने भरे। देश को दौलतमन्द बनाया। ऐसी दशा में

भी कुछ नेताओं के मुंह में पानी आ रहा, है और कर रहे हैं—राष्ट्रीयकरण की बात !

साहेबान ! मेरी पार्टी सारे देश में सभी सीटों पर चुनाव लड़ रही है। आप जानते हैं—इसमें कई करोड़ रुपया खर्च होना है। मेरा निवेदन है आप मेरी पार्टी का हाथ पकड़ें। हमें चुनाव के लिए मिलों की तरफ से १ करोड़ दें। आपके लिए यह कोई बड़ी बात नहीं हैं। फिर आप देखेंगे कि मेरी पार्टी आपका खुल कर साथ देगी। अच्छा धन्यवाद।

मिल मजदूरों की सभा में—

प्यारे मेहनतकश साथियो ! तुम्हारी मेहनत का फल खाकर यह मिल वाले मालदार होते जा रहे हैं। तुम्हारी गरीबी बढ़ रही है। बच्चों को तुम पढ़ा नहीं सकते, सर ढकने को तुम्हारे पास छत नहीं, भरपेट रोटी नहीं। तन ढकने को पूरा कपड़ा नहीं। इन सारे कष्टों का इलाज मेरे पास है—आप सब मिलकर मुझे वोट दें फिर आप देखेंगे कि मैं आपके लिये क्या करता हूँ। अब आप सब मेरे साथ मिलकर तीन बार जोर से नारा लगाओ—

मेहनतकश जिन्दाबाद।

विद्यार्थियों की सभा में—

मेरे प्यारे बच्चो ! भावी भारत के आप ही मालिक हैं। शासन आपको ही संभालना है। मेरे-जैसे बूढ़ों को इस बुढ़ापे में भी दिन-रात देश का दर्द पीड़ा दे रहा है। हर तरफ कोई न कोई खराबी है।

मैं जानता हूं—आप भारी फीस देते हैं। फिर ट्यूशन रखने पर आप को मजबूर किया जाता है। आज महंगी किताबों का भारी बोझ-इस पर भी मास्टर लाल-पीला चाहे जब तमाचा रसीद कर देता है। गरज यह है कि तुम्हें एक हैवान से भी बदतर समझ लिया है—तुम्हारे मास्टरों ने। मेरे बच्चो ! तुम गली-गली में नारे लगा कर मुझे वोट दिलाओ। मेरी कामयाबी में तुम्हारी भलाई है। हाँ—

मुझे एक बच्चे ने कहा कि मौजूदा मेम्बर के पास फार्म पर हस्ताक्षर कराने के लिए बार-बार चक्कर काटते हैं पर वह हमें देखते ही आग बबूला हो जाता है। मेरे बच्चो ! मुझ पर विश्वास करो। मुझसे ऐसी गलती का ख्याल भी नहीं करना।

मुसलमानों की सभा में—

जनाबे सदर साहब व मेरे दोस्तो ! वैसे तो आप मेरे ख्यालात जानते ही हैं—मगर अपने दिल की बात आज न कहूं तो कब ! जनाबे वाला ! मैं जानता हूँ आप हर हालत में पिछड़ गए हैं। साम्प्रदायिक लोग आप पर आये दिन गजब ढा रहे हैं। आपकी जबान उर्दू की तरक्की बन्द कर दी गई। हिन्दी आप पर जबरन थोपी जा रही है। वगैरह वगैरह। मेरी दस्त-बस्ता अर्ज है कि आप की एक-एक वोट मुझे मिले। मैं आपकी हर हालत में खिदमत करता रहूंगा। बस आज इतना ही अर्ज करना था।

क्लर्कों में—

प्यारे साथियो ! आपके कष्टों को मैं खूब जानता हूँ। आप सबेरे ही घर से भागते हो दफ्तर के लिए और रात में आते हो। बच्चों की देखभाल नहीं कर सकते। तनखा बहुत थोड़ी। तुमसे तो रिक्षा वाला ही बेहतर जो १०) लेकर घर में आता है। तुम्हें कपड़ों का, जूतों का, जुरावों का, हजामत का बड़ा खर्च करना पड़ता है। खैर ! बातें बहुत हैं। मेरी पार्टी को वोट दीजिये फिर आप देखेंगे कि मैं सरकार से लड़ूँगा, सरकार नहीं सुनेगी तो तुम से हड़ताल करा दूँगा। आप मुझे हर वक्त अपने बीच में ही पाओगे।

तस्करों की सभा में—

भाइयो ! मैं जानता हूँ कि आपने किन हालात में, चोरी, डकैती, जेबकतर आदि का धन्धा अपनाया है। आपकी परेशानी का मुझे पता रहता है।

मैं चाहता हूँ कि आप भी आराम से जिन्दगी बिता सकें। आपके

लिए मैं सरकार से लड़ूँगा। आप अपना कीमती वोट मुझे दें। बस इतना ही।

नेताजी वेश्याओं की पंचायत में—

देवियो ! मुझे अपनी तकलीफें बताओ। मुझे वोट दो। मैं तुम्हारे लिए सरकार से लड़ूँगा। एक बार नहीं हजार बार लड़ूँगा। कानून की पेचीदगियों और पुलिस की सख्तियों से तुम्हें बचाने के लिए मैं चैन से नहीं बैठूगां। मैम्बर बनने पर आप देखेंगी कि मैं आपके पास बार बार आता हूँ कि नहीं !

नेताजी लोक सभा में—

अध्यक्ष महोदय ! मेरा कहना है कि हमें ५००) मासिक और ५१) भत्ता मिलता है जो बहुत थोड़ा है। आप जानते हैं कि मैं पांच लाख जनता की ओर से आया हूँ। यह तनखा और भत्ता तो चाय पानी पर खतम हो जाता है।

मेरा प्रस्ताव है कि कम से कम एक हजार रुपया महीना और १००) रोज भत्ता, साथ ही एक कोठी, एक टेलीफून, बिजली-पानी, माली फ्री मिलना चाहिए। रेल तो फ्री है ही मगर वायुयान की यात्रा भी हमें फ्री मिलनी चाहिए जनता की सेवा करने की कठिनाई अध्यक्ष महोदय आप जानते ही हैं।

मेम्बर साहब की कोठी पर—

चपरासी से हाथ जोड़ते हुए सरदार साहब जी ! मेम्बर साहब जी से मिलना है। जी मैं ५५० मील दूर एक गांव का किसान हूँ जी ! अपना दुःख सुनाने आया जी !

चपरासी—साहब आराम कर रहे हैं दो घंटे में आना।

दो घंटे के बाद—मैं आ गया जी ! मेम्बर साहब जी से कह दो जी !

चपरासी—मेम्बर साहब अभी बाहर चले गए हैं। ८ दिन में आवेंगे। तब आना।

किसान—सिर पकड़कर-हाय राम, अब क्या करूँ ! कहां जाऊँ ! किस से दुखड़ा कहूं !!

विश्व विख्यात

आर्य हवन सामग्री

विश्व की यज्ञ प्रेमी आर्य जनता को हर्ष सूचना

वैदिक विद्वानों द्वारा प्रमाणित शास्त्रोक्त विधि से निर्मित सुगन्धित, पौष्टिक रोगनाशक हवन सामग्री से ही नित्य यज्ञ करें।

नं. १ स्पेशल मेवायुक्त हवन सामग्री का भाव ५) किलो।
नं. २ आर्य हवन सामग्री का भाव ३) किलो।
नं. ३ सुगन्धित हवन सामग्री का भाव २) किलो है।

थोक आर्डर प्राप्त होने पर रेल किराये में छूट दी जायेगी।

आज ही आर्डर भेजें।

—धर्मवीर झंडाधारी

अध्यक्ष, आर्य हवन सामग्री निर्माणशाला

सराय रुहेला, नई दिल्ली-५

महोदय,

आपका भेजा सत्यार्थप्रकाश बड़ा सुन्दर तथा आकर्षक है। आपको बधायी ! भगवान आप को बल तथा शक्ति दें कि आप इस प्रकार के शुभ कार्य करते रहें।

गोहाटी— —नारायणदास (डाक्टर)

सम्पादक जी,

जय ऋषि !

'जन ज्ञान' वास्तव में महर्षि के मार्ग की पूर्ति करने का एक मात्र साधन है। मैं पूर्ण विश्वास के साथ कहता हूँ कि यदि 'जन ज्ञान' के एक लक्ष ग्राहक बन जावें तो देश से पाखण्ड समाप्त हो जावे। अतः देश सेवा करना चाहते हो परोपकार की भावना है, या दया, प्रेम और श्रद्धा के प्रतीक बनना चाहते हो तो 'जन ज्ञान' के ग्राहक बनो ! मैं तो यह ही कहूंगा कि जहाँ वेद का पढ़ना सुनना आर्यों का परम धर्म है। वहाँ यह भी लिख दें कि जन ज्ञान का ग्राहक बनना, पढ़ना और सुनना भी आर्य का सब से पहला कर्त्तव्य है।

रोहतक —बलवीर सिंह आर्य

महोदय

जन-ज्ञान फरवरी १९७२ के अंक में आपका आर्य राज्य कैसे हो ? यह लेख मुझे बहुत अच्छा लगा लेकिन आपने आर्य राज्य स्थापना के लिये (संभव हो या न हो) जो नींव डाले हैं उन लोगों का विमर्श करना कोई अच्छा नहीं क्योंकि वे राजनैतिक क्षेत्र में क्रांति लेने के लिए अग्रसर हुए हैं। वैसे लोगों को क्या आप कितने लोगों को आर्यसमाजी बनाए ऐसा कहकर दोष देना

अच्छा नहीं क्योंकि उन्हें उसी में दिलचस्पी है आदि। समाज के विरुद्ध तो कोई कार्य नहीं कर रहे हैं। इसलिए इन्हें राजनैतिक क्षेत्र में ही आगे बढ़ने दीजिए और अपना अस्तित्व रखने और प्रतिनिधित्व करने दीजिये। अगर आर्य समाज का प्रचार चाहते हैं तो कितने आर्य समाजी नहीं है जो गुरुकुल में पढ़कर विद्वान बने हैं। इन लोगों से आप क्यों नहीं पूछते ? यही है बहुत से आर्य समाजियों में छिपी गलती, क्योंकि आप जैसा कोई त्याग नहीं करते ऐसे लोग बहुत कम हैं। और युवावस्था में त्यागी बनकर काम करने वाले विद्वान कम मिलते हैं। और ऊपर से ढोंग रचते हैं। हमारे यहां जो आर्य प्रतिनिधि सभासद हैं वह केवल नाम के लिये ही हैं क्योंकि यहां एक भी निर्माणात्मक कार्य नहीं बनता जो कुछ हो रहा है तो व्यक्तिगतरूप से ही। यह प्रतिनिधि सभा तेलुगु प्रांत में है लेकिन यहां से एक तेलुगु पत्रिका भी नहीं निकलती क्या भाषा को साधन रूप में ग्रहण करना दोष है ? तो फिर कैसे प्रचार होगा ? प्रचार रूप से सस्ता दाम में सत्यार्थप्रकाश का प्रतियां नहीं मिले जैसे आप के यहां हो रहा है। आज तक ऋषि का एक भी अच्छा आकर्षक जीवन चरित्र नहीं निकला। एक व्यक्ति है पं० अन्नेके जिसने स्वयं यजुर्वेद का तेलुगु भाषानुवाद करके अकेला ही प्रकाशित किया है वैसे ही पं० वेंकटेश्वर शास्त्री जी हैं अकेला ही विराट नाम का तेलुगु साप्ताहिक पत्रिक चल रहा है। इसी तरह पं० गोपदेव दर्शनाचार्य जिसने षडदर्शनों को एकादश उपनिषदों को तेलुगु में व्याख्यान करके बहुत सेवा की है। लेकिन ऐसे विद्वानों का (जो तेलुगु प्रांत में बिलकुल कम हैं) न आदर करते हैं न सहायता करते हैं न काम देते हैं। इसलिये यहाँ आर्य समाज की प्रगति ही नहीं है। और कुछ ऐसे भी पंडित हैं जो प्रतिनिधि सभा को खुश करते हुए अपनी स्वार्थ के लिए प्रचार कार्य में लगे रहे हैं और वह भी मुख्य रूप से गीता का प्रचार करते हैं शायद उनको गीता का प्रचार करने वाले बिल्कुल कम दीखते होंगे। और कैसे लोगों को पुरोहित बनाते हैं वे आर्य समाजी न हों अर्थात् सत्यनारायण कथा तथा श्राद्ध कराने वाले हों इस तरह आर्यसमाजी पुरोहितों को संस्कार कराने का मौका न देते हुए आर्य समाज के प्रचार कार्य में दिवार बन के खड़े रहते हैं। क्या ऐसा करने से आर्य समाज का प्रचार हो सकेगा कदापि नहीं। जब तक सच्चे दिल से निःस्वार्थ भाव से त्याग-तपस्या-सदाचार से युक्त होकर आवेदन से काम नहीं करते तब तक कार्य कुछ भी न होने वाला है। इसलिये जिस क्षेत्र से आगे बढ़ना चाहते हैं इन्हें उस क्षेत्र में आगे बढ़ने दीजिये अगर उनमें सच्चाई त्याग-तपस्या रहे तो काफी है। लेखनी ढोंगी नहीं रहने चाहिए। इसलिए काम करने वालों को हम कभी निरुत्साही न बनावें और दोषी न ठहरावें क्योंकि आगे समाज के क्षात्र शक्ति की भी बहुत जरूरी है। बस यही मेरा निवेदन है।

निजामा बाद

—अंदे गंगाराम आर्य

आदरणीय !

२५ प्रतियां सत्यार्थ प्रकाश की आप द्वारा भेजी गईं मिलीं व हाथों हाथ बिक गयीं-इतनी बढ़िया पुस्तक आपने छपवाई उसके लिए मैं अपनी ओर से आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। आर्य जगत आपका आभारी रहेगा।

पूजला, जोधपुर —जगदीशसिंह आर्य

सम्पादक जी !

सत्य सांई। बनाम उभरते 'मगर मच्छ'

लेख ने इसके अनुयायियों के होश गुम कर दिये। यहां हमारे रेलवे कार्यालय में भी इसके लग भग १०० अनुयायी हैं, सबने लेख पढ़ा आश्चर्य कर रहे हैं। आनन्द मार्ग की भी अच्छी पोल खोल दी है। आपसे निवेदन यह है कि खण्डन-मण्डन के लेख आते ही रहना चाहिये। कृपया उक्त सत्य सांई पर एक जोर दार लेख और लिख दें जिस में यह मत कैसे और कहां से चल पड़ा। आर्य समाज के पंडित जी तो कहते हैं कि यह हिन्दुओं को भुलावा देकर मुसलमान बनाने का षड़यन्त्र है। खैर कुछ भी है इस पर विस्तृत प्रकाश करके और डाल दें। दूसरा यहाँ सन्तोषी माता का शुक्रवार को मेला होता है तीसरा गायत्री परिवार की पढ़े लिखों में धूम है। यज्ञ आदि भी अवैदिक होते हैं। सत्य साँई पर एक लेख अवश्य लिखने की कृपा करेंगे।

रतलाम —जे० पी० पगारे

मान्य महोदय,

इस प्रकार की सस्ती और सुन्दर सत्यार्थ प्रकाश को देख कर हृदय से बार २ आपके इस कार्य के प्रति श्रद्धा जागृत होती है। इस प्रकार का प्रचार चलता रहा तो वास्तव में आर्य जगत् महर्षि के विचारों को विश्व में फैला सकेगा। २) वाला सत्यार्थ प्रकाश देख कर तो प्रत्येक व्यक्ति लेने को इच्छुक हो रहा है। शायद इस सप्ताह तक २५ प्रतियां समाप्त हो जायें तो क्या आप ५० प्रतियें २) रु० वाली और भेज सकेंगे ?

पुस्तकाध्यक्ष, आर्य समाज, जोधपुर

आदरणीय संपादकजी,

सादर नमस्ते।

मुझे प्रभुकृपा से कुछ मास पूर्व जनज्ञान अचानक पढ़ने को मिल गया। और तभी से मैं इसका प्रत्येक अंक पढ़ने तथा अपने मित्रो-संबन्धियों में पढ़ाने तथा प्रचार करने का संकल्प किया था। पर एक अत्यन्त निर्धन विद्यार्थी होने के नाते चंदा जल्द नहीं भेज सकता जिसके चलते जनज्ञान पढ़ने से वंचित रहा।

मैं जन ज्ञान का सदस्यता शुल्क १०) भेज रहा हूँ इसे आप स्वीकार कर जनज्ञान का प्रत्येक अंक वर्ष भर यथा समय भेजते रहियेगा।

आरा —रविकान्त सिन्हा

आदरणीया वहिन!

आपने जो सत्यार्थ-प्रकाश मुझे भेजा वह भी मिल गया, बहुत ही पसन्द आया—

आपके पत्र से यह पढ़कर बड़ी प्रसन्नता है कि आपके दयानन्द-संस्थान ने महर्षि का सन्देश फैलाने का संकल्प लिया है मैं हृदय से यही चाहती हूँ कि भगवान आपको अपने इस महान् कार्य में अधिक सफलता प्रदान करें। सत्य का मार्ग अति कठिन है पर अन्त में सच्चे अधिकारी की विजय होती है आप द्वारा यह जो जन-ज्ञान प्रकाशन हाता वह भी पढ़कर मुझे अति प्रसन्नता है यह जो महान् संकल्प आपने लिया है यह कार्य सव के सहयोग से ही होते हैं मैं भी इस पवित्र कार्य के लिये १००) भेज रही हूँ।

—चन्द्रकान्ता
नागपुर विद्यालंकृता

मान्य महोदय,

जो पुस्तक आप ने अंग्रेजी में आर्यसमाजियों को भेंट दिया, उसे पाकर बहुत प्रसन्न हुआ। जन ज्ञान की सेवा चिर स्मरणीय रहेगी। तमिलनाडु में आर्य-समाज अभी सुपुप्ति में हैं, यह तो चिन्ता और शोक की बात है, यहां नास्तिकता द्राविड कषगम और शासकीय द्राविड मुन्नेट्र कषगम का सहायता और उन के हिन्दू धर्म विरोधी चालों से वढ़ जा रही है, तमिल में आर्य समा-

जियों को बहुत ही तकलीफें उठाना है, पर वे कोई परवाह नहीं करते हैं। आर्य समाजियों के बारे में तमिलनाडु की आम जनता कुछ भयंकर विचार रखते हैं, यह बात मुझे मालूम है, जब मैंने मेरे मोहल्ले में इस के प्रचार के लिये कुछ करने की कोशिश किया तो साधारण जनता "आर्य-द्रविड" राजनीति और ब्राह्मण-अब्राह्मण जाति चिन्ता की शृखंला में फँसे हुए हैं, हिन्दी विरुद्ध, उत्तर भारत विरुद्ध, ब्राह्मण विरुद्ध हिन्दू धर्म विरुद्ध, संस्कृत भाषा विरुद्ध—इन शब्दों में यहां की चिन्ता गती को हम कह सकते हैं, अगर तमिलनाडु में आर्य समाज कुछ न कुछ नहीं करें तो, हो सकता है, यहां के लोग एक दिन क्रिस्टियन और मुसलमान बनकर भारत से अलग हो सकते हैं, यह मेरा दृढ़ विचार हैं, इसे रोकने के लिए मैं यहाँ के आर्य समाज नेताओं को अनुनय और विनय कर रहा हूँ, वेद प्रचार तमिल भाषा में तमिलनाडु के कोने कोने में करना, सब रूप में करना अत्यावश्य है,

यदि आप इस महान प्रश्न आप के वृन्द के सामने रखें तो मैं आभारी रहूँगा—

आपका विनीत,

मद्रास — एक सदस्य

आदरणीय

आप का पत्र क्रमांक १८६३ दिनांक १८ दिसम्बर का मिला साथ ही कार्ड भी। धन्यवाद ! सभी कार्ड बांट दिए हैं। आप लोग हम सैनिकों का कितना ध्यान रखते हैं व कितना स्नेह करते हैं जान कर हार्दिक हर्ष की अनुभूति हुई।

यदि भविष्य में भी इसी प्रकार का स्नेह एवं प्रोत्साहन मिलता रहा तो कौन ऐसी मूर्खता करेगा जो भारत मां की ओर कुदृष्टि डाल सके।

नव वर्ष आप, परिवार एवं कर्मचारियों को शुभ हो यही कामना है।

शेष प्रभु इच्छा !

द्वारा ५६. ए. पी. ओ. — —सत्यपाल 'निश्चिन्त'

—३—

बधाई-पत्र

हे तपस्वी आर्य नेता ओजस्वी वक्ता निडर।
आपको शत्-शत् बधाई पूज्य आचार्य प्रवर॥

युग प्रवर्तक ऋषि दयानन्द के सिपाही वीर हो तुम,
कर्मयोगी देश भक्त प्रशान्तचित्त सुधीर हो तुम,
ऋषि मिशन की साधना में तुम निरन्तर बढ़ रहे हो,
विघ्न बाधायें उठाते लक्ष्य पर निज अड़ रहे हो,

छा रहे अज्ञान के तम से रहे तुम कर समर।
आप को शत्-शत् बधाई पूज्य आचार्य प्रवर॥

आज वेद प्रचार में महती शिथिलता आ रही है,
आर्य जगती में निराशा की निशा अब छा रही है,
थामना तुम ओम की पावन पताका झुक न जाये,
ऋषि मिशन के सैनिकों की गति कहीं अब रुक न जाये,

आर्य गण हृदयेश तुमको प्राप्त है प्रतिभा प्रखर।
आप को शत्-शत् बधाई पूज्य आचार्य प्रवर॥

हो रहा 'जनज्ञान, जनप्रिय वेद पथ पर चल रहे तुम,
लोक मंगल कामना में आज तिल-तिल जल रहे तुम,
ज्योति अब जन ज्ञान की अज्ञान तम को खा रही है,
क्रान्ति ये साहित्य की पाखण्ड के गढ़ ढा रही है,

ऋषि मिशन में आपकी यह साधना होगी अमर।
आप को शत्-शत् बधाई पूज्य आचार्य प्रवर॥

सत्यरामसिंह
एम० ए० एल० एल० बी०
प्रधान

महेशचन्द्र शर्मा
एम० ए० पी० एच० डी०
मंत्री

आर्य समाज हाथरस मैनपुरी उ० प्र०

मुद्रक—प्रकाशक—संपादक श्रीमती राकेश रानी द्वारा सैनी प्रिन्टर्स
दिल्ली में मुद्रित

आर्यसमाज के प्रसिद्ध विचारक और रचनात्मक कार्यों के चिन्तक—

श्री वीरेन्द्र जी

आप ने "दयानन्द संस्थान" का "संचालक सदस्य" बन अपना आशीर्वाद प्रदान किया है।

संस्थान के "पोषक सदस्य"

श्री प्रह्लादभाई कानजीभाई पटेल

आप अत्यन्त धर्मपरायण और श्रद्धामय जीवन के आर्य पुरुष हैं। आप का सम्पूर्ण परिवार ही आदर्श आर्य है। आपने ५०१) प्रति वर्ष 'दयानन्द संस्थान' को देकर पोषक सदस्य बनना स्वीकार किया है। धन्यवाद !

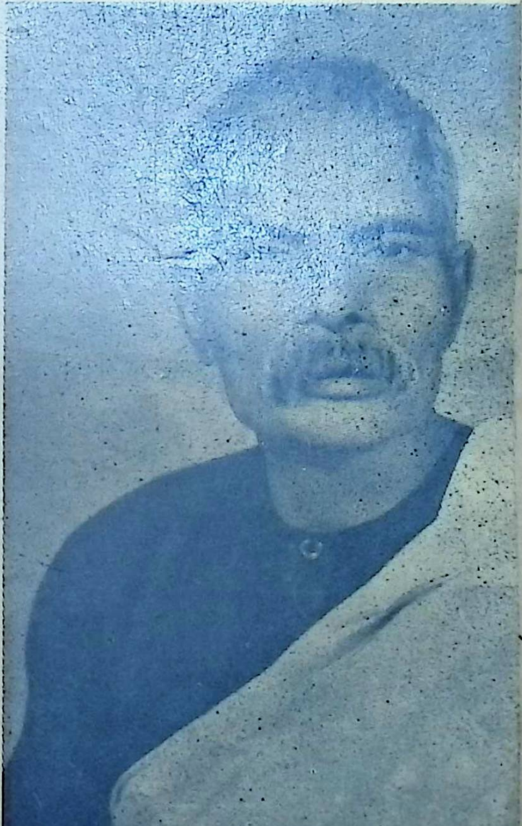

वैदिक वाङ्मय के प्रकाण्ड पंडित

स्व० श्री पं० नरदेव जी शास्त्री वे